वाइ० जुब्रिट्स्की
वी० केरव
डी० मित्रपोल्स्की

प्राक्-पूँजीवादी समाज का संक्षिप्त इतिहास

पीपुल्स बुक हाउस प्रकाशन

अंग्रेजी से अनूदित

प्रकाशक : पीपुल्स बुक हाउस, पटना

रूपान्तरकार : के० गोपालन

मूल्य : एक रुपया

मुद्रक : यतीन प्रेस, पटना-४

विषय-वस्तु

भूमिका

१९६० ई० में तंगानयिका के ओल्डोवाय केनियन में खुदाई का काम करते समय कुछ वैज्ञानिकों को एक प्रागैतिहासिक मनुष्य का अवशिष्ट मिला जो ६,००,००० वर्ष पहले जीवित था। उसके बगल में भद्दे आकार के कुछ पत्थर पड़े हुए थे। वे मनुष्य द्वारा काम में लाये गये प्रथम औजार थे जो एक खास उद्देश्य से बने हुए थे; उसके लिए भोजन का प्रवन्ध करना और जानवरों से उसकी रक्षा करना।

उस तरह के आदिम शस्त्रों से लैस होकर भी आदमी प्रबल प्राकृतिक शक्तियों के सामने बिल्कुल असहाय था। वह असीम जंगलों में खाने की तलाश में भटकता फिरता था। उसकी जिन्दगी हमारे समकालीन लोगों की अपेक्षा जानवरों से अधिक मिलती-जुलती थी।

वर्ष और युग बीत गये······पुश्त के पुश्त विस्मृति में खो गये। आदमी का जीवन बदल गया। तब १२ अप्रैल १९६१ को, ओल्डोवाय केनियन की खोज के लगभग एक वर्ष बाद, सोवियत यूनियन ने प्रथम अंतरिक्ष यान छोड़ा जिसमें प्रथम अंतरिक्ष यात्री यूरी गागरिन, सोवियत यूनियन का एक नागरिक, अपनी ऐतिहासिक उड़ान में मनुष्य की महान सफलता—बाह्य जगत में आदमी की पहुँच का प्रत्यक्ष प्रमाण लिये हुए था।

अपने विकास के क्रम में मनुष्य ने कितना लम्बा रास्ता तय कर लिया है !

उसको किस तरह की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था ? आदिम घुमक्कड़ जिन्दगी से उठने के बाद मानव समाज का कैसे विकास हुआ ?

इतिहास, मानव जाति के अतीत और वर्त्तमान से सम्बन्धित विज्ञान, इन सवालों का जवाब देता है ।

लेकिन इतिहास ने इन प्राचीन घटनाओं के बारे में, जो ऐसे समय में घटित हुई थीं जब कि न कितावें थीं और न अखबार, कैसे जान लिया ? सब से प्राचीन "ग्रंथ" जो मनुष्य के प्रारंभिक दिनों का इतिहास बताता है, वह खुद पृथ्वी है । जब प्राचीन मनुष्य ने अपने रहने की जगह त्याग दी तब उसके आवास और औजार धीरे-धीरे मिट्टी की तहों के नीचे दब गये । तब इतिहासज्ञ आये । मिट्टी खोदते हुए उन्होंने बहुत सावधानी से मिट्टी की तह एक के बाद एक करके तब तक हटायी जब तक वे सबसे नीचे की तह में नहीं पहुँचे । वह मानव इतिहास का पहला पृष्ठ था जिसने सबसे प्राचीन काल के जीवन-समाज के गठन के युग का परिचय दिया । उसके बाद एक दूसरा आश्चर्यजनक ग्रंथ मिला—जनता के गीत और कहानियाँ । अपने गीतों में लोग अपने दैनिक जीवन, अपना काम, अपने अतीत के बारे में गाते हैं । उसके विषय धीरे-धीरे बदलते हैं; नयी घटनायें अतीत काल की घटनाओं के साथ मिलजुल जाती हैं । और फिर इतिहासज्ञ का काम है कि प्राचीन लोकगीत की सामग्रियों से सच्चे विवरणों की छानबीन करे और मानव इतिहास के इन पृष्ठों को पढ़े । बाद में मनुष्य ने लिखना सीखा, पहले पत्थरों पर, फिर चीनी मिट्टी से बने तखतों पर और अन्त में कागज पर । अक्सर ये बीती घटनाओं के, भिन्न-

भिन्न जातियों के जीवन का उस अतीत काल में प्रचलित कानूनों के विवरण होते थे। इन सारी उपलब्धियों से प्राचीन मानव की जीवनचर्या का सच्चा पुनर्गठन करने के लिए इतिहास को पर्याप्त सामग्री मिली।

लेकिन मनुष्य के मूल स्रोत के बारे में विज्ञान हमें क्या बताता है? मानव समाज की रचना का वह कैसे वर्णन करता है? बहुत समय पहले वैज्ञानिकों को मनुष्य और जानवर के बीच, खास कर (ऐन्थ्रोप्वायड एप—मानवकल्प बन्दर) के साथ करीबी समानता का पता चला था। महान अंग्रेज प्राकृतिकशास्त्री (नेचुरालिस्ट) चारलस डारविनने साबित किया कि मनुष्य और विभिन्न प्रकारके ऐन्थ्रोप्वायड एप—(मानवकल्प बन्दर—चिम्पैन्जी, गोरिल्ला, औरंगउटांग और गिब्बन) के बीच शरीर का गठन, अस्थि-पंजर, भीतरी अवयव और खून, गर्भ का विकास आदि बहुत सी बातें समान हैं। यह मनुष्य और काफी विकसित जानवरों के बीच के जीवन का सम्बन्ध प्रमाणित करता है। तो भी लम्बे वानरों का, जो अब बिल्कुल लुप्त हो चुके हैं, जो अवशिष्ट पाया गया है वह इस बातको साबित करता है कि मनुष्य (ऐन्थ्रोप्वायड) की अपेक्षा इन प्राचीन प्राणियों से अधिक सम्बन्धित था। यह साबित करता है कि मनुष्य काफी विकसित बानर, मनुष्य और वर्त्तमान बानरों के पूर्वजों के कुल से पैदा हुआ है।

तीन करोड़ वर्ष से भी पहले पृथ्वी की भूमध्य रेखा के अगल-बगल के जंगलों में प्राचीन ऐन्थ्रोप्वायड रहते थे। हजारों-हजार वर्षों में उनकी संतानोंने चारों तरफ की परिस्थिति के अनुकूल भिन्न-भिन्न प्रकार से अपने को बनाया।

यद्यपि इन वानरों का बहुमत जानवरों का जीवन बिताता रहा, मनुष्य के पूर्वजों ने एक भिन्न रास्ता अपनाया। अपनी परिस्थितिके अनुकूल अपने को बनाते हुए उन्होंने क्रमशः सीधे चलना सीखा और इससे उनके आगे के अवयव (अंग) दूसरे कार्यों से मुक्त हुए। जैसे-जैसे उनका आगे का अंग विकसित होता गया वानर-मनुष्य ने (अपनी पशु-चेतना से प्रेरित होकर) प्राकृतिक वस्तुओं को—छड़ी और पत्थर—सुरक्षा और हमले के शस्त्र के रूप में इस्तेमाल करना शुरू किया। धीरे-धीरे उसने इन वस्तुओं को खाद्य पदार्थ पैदा करने में, शिकार करने और खाने लायक कन्द-मूलों को खोदने में, औजार के रूपमें इस्तेमाल करना सीखा। पत्थरों और छड़ियों का नियमित इस्तेमाल उस के शरीर और खास कर हाथों का विकास करने में सहायक हुआ।

मनुष्यने उन पत्थरों का चुनाव करना शुरू किया जो उसकी आवश्यकता के लायक थे। बाद में उसने पत्थरसे पत्थर रगड़ कर उन्हें गढ़ने-बनाने को सीखा, उन्हें तेज करने, आवश्यक आकार-प्रकार देने, मजबूत पत्थरों को तोड़ने और उन्हें चिकना करने को सीखा। इस तरह मनुष्य के पूर्वजों ने भोजन जुटानेके लिए प्रथम औजार बनाने को सीखा।

कोई भी जानवर, सबसे विकसित भी, मामूली औजार नहीं बना सकता। श्रम और औजारों का निर्माण ही मनुष्य को जानवरों की दुनिया से अलग करता है। कार्य-कलापने ही मनुष्य और ऐन्थ्रोप्वाएड के पूर्वजों का विकास भिन्न रास्ते में किया। ऐन्थ्रोप्वाएड ने जानवरों का जीवन जारी रखा

और वे अपने को निष्क्रिय रूप से ही प्रकृति के अनुकूल बना सके। इसके विपरीत, मनुष्य सक्रिय श्रमके मार्ग में और बाद में सामाजिक प्रगति करके प्राकृतिक शक्तियों के खिलाफ संघर्ष करता हुआ विकसित होता है, उद्देश्य के अनुसार प्रकृति में परिवर्त्तन लाता है और उसे अधिक से अधिक अपने फायदे के लिए काम में लाता है।

इस तरह मनुष्य के शारीरिक विकास से उसे काम करने की क्षमता मिली। श्रमने अपनी ओर से मनुष्य के विकासको और उत्तेजित किया। हाथ पर, जिसने मनुष्यके विकासक्रम में अधिक दक्षता और लचीलापन हासिल किया है, उसका विशेष असर पड़ा। औजारों ने उसे खाने के लिए अधिक तरकारी और मांस प्रदान किया। मांस-भोजन में संक्रमण से मनुष्य के शरीर, और खास कर मस्तिष्क का, और विकास हुआ। लेकिन श्रमने ही मनुष्य की बुद्धिके विकासमें मुख्य भूमिका अदा की। सक्रियता ने मनुष्य का ध्यान इर्द-गिर्द की प्राकृतिक वस्तुओं के गुणों की ओर आकर्षित किया। उसने अपने वातावरण के बारे में आम विचार निर्धारित किया और व्यवहार में अपने विचारों की जांच की, इस तरह भिन्न-भिन्न वस्तुओं और दृश्यों के बीच के सम्बन्ध का अविष्कार किया। हम कल्पना कर सकते हैं अपना प्रथम पत्थर का औजार बनाने के क्रम में प्राचीन मनुष्य ने देखा कि कुछ पत्थर टुकड़ों में टूट सकते है और आसानी से पत्थर की छुरी बन सकती है। इस तरह काम के क्रम में मनुष्य की बुद्धि का विकास हुआ और सोचना संभव हुआ। इससे अपने श्रम के परिणाम का अनुमान करना मनुष्य के लिए संभव हुआ। उस की अचेतन, स्वाभाविक

कार्रवाइयोंने एक चेतनायुक्त, उद्देश्यपूर्ण रूप धारण किया। इस तरह मनुष्य के श्रमने बुद्धि के विकास को द्रुततर किया, जबकि मनुष्य की मानसिक क्षमताके विकासने उसके श्रम से होने वाले कार्यों को प्रभावित किया।

मनुष्य के श्रम की कल्पना अलगाव में नहीं की जा सकती, इसलिए सामूहिक श्रम के लिए लोगों ने समूह बनाया जिसके लिए उन्हें आपस में विचार विनिमय करने की आवश्यकता पड़ी। इस प्रकार मानव-श्रम बोली—विचारों को प्रगट करनेके साधन—के उदय और विकास का कारण बना। मनुष्य की बोली जानवरों की उन अस्पष्ट ध्वनियों से बनी जो खतरे के समय जानवर निकाला करते हैं। मनुष्य की बोली ध्वनिके रूपान्तर में हजार गुना समृद्ध ही नहीं है बल्कि उसके प्रारंभ से ही मनुष्य की बोली में सचेत कार्यों की प्रतिच्छाया थी न कि स्वाभाविक प्रवृत्तियों की।

श्रम के क्रम में मनुष्य की बोली विकसित हुई। उसका एक स्पष्ट रूप बना जिससे वह अपने विचारों और योजनाओं को प्रकट कर सका। मानव समाज के विकास में बोली बहुत महत्वपूर्ण थी; उसने काम के सिलसिलेमें बहुत से लोगों को एकताबद्ध किया और सामूहिक श्रम का संगठन करना संभव बनाया। इस तरह मनुष्य की कुशलता समृद्धऔर विस्तृत हुई।

इसलिए मानव जाति के विकास का मुख्य तत्त्व मनुष्य का श्रम था। मनुष्य के विकास में श्रम की भूमिका का पता सबसे पहले विशिष्ट विद्वान और मजदूरों के नेता कार्ल-मार्क्स (१८१८-१८८३) और फ्रेडरिक एंगल्स (१८२०-१८९५) ने

लगाया। इन दोनों ने ही मनुष्य के विकास के सक्रिय श्रम की भूमिका पर विशेष जोर दिया और उसको सूत्रबद्ध किया कि "श्रमने मनुष्य का स्वयं निर्माण किया।"

सदियाँ बीत गयीं। श्रम ने मनुष्य को एक दूसरे के करीब ला दिया। लेकिन मनुष्य के उद्‌भव का ज्ञान उसके विकास की शताब्दियों के बारे में कुछ भी नहीं बताता है। सामाजिक विकास का मुख्य तत्त्व क्या है? उसकी चालक शक्ति क्या है? मानव समाज का आधार किससे बना? इन प्रश्नों की छान-बीन करके ही मानवजाति का इतिहास समझना संभव है।

अपने जीवन-निर्वाह के लिए मनुष्य को कुछ अनिवार्य वस्तुओं की आवश्यकता है: खाना, कपड़ा, रहने की जगह आदि। जानवर उन्हीं वस्तुओं का इस्तेमाल कर सकते हैं जो प्रकृति द्वारा प्रदत्त हैं। वे घास और फल चुनते हैं; वे अन्य जानवर—चिड़िया, मछली, कीड़े-मकोड़े आदि का शिकार करते हैं। लेकिन वे इन वस्तुओं को उतना ही प्राप्त कर सकते हैं जितना कि उनका प्राकृतिक विकास हुआ है—एक जानवर एक उड़नेवाली चिड़िया को नहीं पकड़ सकता चाहे वह कितना ही भूखा क्यों न हो। मनुष्य की स्थिति भिन्न है। औजार बनाकर और प्राकृतिक वस्तुओं एवं प्राकृतिक शक्तियों का इस्तेमाल करके मनुष्य खुद अपनी जिन्दगी के लिए आवश्यक वस्तुओं का निर्माण करता है। एक मामूली छड़ी का इस्तेमाल करके आदमी कन्द खोद कर निकाल सका जो अन्यथा वह नहीं पा सकता था। पत्थर के औजार से वह बड़े जानवरों को मार सका। बाद में तीर-कमान, भाले और बरछे के

आविष्कार से दूर के जानवरों का शिकार करना एवं उड़ने-वाली चिड़ियों को मारना उसके लिए संभव हुआ। यदि मनुष्य आवश्यक औजारों का निर्माण नहीं करता तो यह कभी संभव नहीं होता। कृषि और पशुपालन के विकास के साथ अन्य वस्तुओं के उत्पादन से मनुष्य को जीवन-निर्वाह का अतिरिक्त साधन प्राप्त हुआ और भौतिक मूल्य में आम वृद्धि हुई। फिर भी मनुष्य का श्रम केवल अधिक वस्तुओं को ही हासिल नहीं करता जो प्रकृति स्वयं प्रदान करती है। वह नयी वस्तुओं का निर्माण करता है जो बनी-बनायी शकल में नहीं रहतीं। प्रागैतिहासिक मनुष्य ने प्रकृति से अपनी रक्षा करने के लिए, कपड़ा बनाने के लिए, मारे गये जानवरों का चमड़ा खींच लिया। अपने औजारों की मदद से उसने निवास-स्थान बनाया। आजकल मनुष्य ऐसी असंख्य वस्तुएँ बना सकता है जिनका कभी अस्तित्व नहीं था और न प्रकृति में ही था।

चूँकि मनुष्य स्वयं बनायी गयी भौतिक वस्तुओं के बिना जीवित नहीं रह सकता, इन वस्तुओं का उत्पादन मनुष्य के अस्तित्व का आधार बन गया है।

मनुष्य के विकास के लिए वस्तुओं की लगातार वृद्धि आवश्यक है, इसलिए उनका उत्पादन बराबर बढ़ाना चाहिए और उसका सुधार भी होते रहना चाहिए। इसके अलावा वस्तुओं के उत्पादन की प्रगति मनुष्य के संकल्प और इच्छा पर ही निर्भर नहीं रहती। वह वस्तुगत विकास, सामाजिक जीवन के नियमों का परिणाम है।

भौतिक सम्पत्ति के उत्पादन, जो समाज के जीवन का आधार है, का कैसे विकास होता है? उत्पादन के लिए वस्तु—श्रम

जिस पर किया जाता है और श्रम का साधन जिसके जरिये मनुष्य वस्तु पर काम करता है—की आवश्यकता है। उत्पादन के लिए सबसे पहले उत्पादक-औजारों की आवश्यकता है, अर्थात् वे औजार जो मनुष्य अपने श्रम के लिए इस्तेमाल करता था और अब भी कर रहा है—रुखड़े पत्थर के आदिम औजारों से लेकर आधुनिक पेचीदे मशीन तक। वस्तु-साधन और श्रम के लक्ष्य, जो मिलकर उत्पादन का साधन बनता है, अपने आप वस्तुओं का निर्माण नहीं करता। उत्पादन की प्रक्रिया में मुख्य भूमिका मनुष्य की, श्रमजीवी जनता की है, जो औजारों को पैदा करने और इस्तेमाल करने में समर्थ है, क्योंकि उसे निश्चित कुशलता और अनुभव प्राप्त है।

उत्पादन के साधन, जो समाज बनाता है, और श्रमजीवी जनता मिलकर समाज की उत्पादक शक्ति हैं। श्रमजीवी जनता ही निर्णायक शक्ति है जिसके बिना उत्पादन के साधन निर्जीव हैं।

वस्तुओं के उत्पादन का विकास उत्पादक शक्तियों में परिवर्त्तन होने के साथ शुरू होता है, जिसका सम्बन्ध सबसे पहले श्रम के उपकरणों के विकास से है, जो लगातार सुधारा जाता है और भिन्न-भिन्न श्रम की प्रक्रिया के लिए काम में लाया जाता है। इन उपकरणों की लगातार तरक्की ही सामाजिक विकास का आधार है और मनुष्य को प्राकृतिक शक्तियों पर कम निर्भर बनाती है। श्रम के औजारों के विकास का स्तर ही प्राकृतिक शक्तियों पर मनुष्य की प्रभुता की मात्रा निर्धारित करता है। आदिम मनुष्य एक पत्थर की कुल्हाड़ी से एक झाड़ी की पट्टी

काट सकता था, लेकिन एक जंगल नहीं; यह तभी संभव हुआ जब एक सुधरी हुई कुल्हाड़ी, एक लकड़ी की मुठिया के साथ प्रकट हुई। एक पत्थर की कुल्हाड़ी एक बढ़ी हुई मुठिया के साथ कुदाली बन गयी जो जमीन कोड़ने के काम में आयी। पत्थर की कुल्हाड़ी के विकास से मनुष्य प्रारम्भिक खेती का क्षेत्र बना सका और उसके फलस्वरूप उसका सम्पूर्ण जीवन-क्रम बदल गया। कृषि का विकास समाज के जीवन में और भी बड़ा परिवर्त्तन लाया। आधुनिक मशीन हमारे समकालीन लोगों की जिन्दगी में क्रांतिकारी परिवर्त्तन करती है जिससे फसल की बरबादियाँ और प्राकृतिक विपदायें उत्तरोत्तर कम भयावह होती जा रही हैं।

इसलिए भिन्न-भिन्न सामाजिक काल (युग) का निर्धारण मुख्यतः भौतिक संपत्ति के पैदा करने के लिए इस्तेमाल किये जाने वाले श्रम-औजार ही करते हैं। सामाजिक विकास की सही समझदारी के लिए सबसे पहले उसके मुख्य तत्त्व का—भौतिक मूल्यों के उत्पादन के विकास का—विश्लेषण करना जरूरी है। यह जरूरी है कि उत्पादन के लिए इस्तेमाल किये गये औजारों का, भौतिक मूल्यों का निर्माण करने वाले लोगों के ज्ञान और कौशल का पता लगावें, अर्थात् समाज की उत्पादक शक्तियों के विकास के स्तर का पता लगावें।

लेकिन जैसा कि हमने कहा, उत्पादन करने के लिए लोगों को सामूहिक रूप से श्रम में हिस्सा लेना पड़ेगा। उत्पादन के क्रम में लोगों के बीच जो सम्बन्ध स्थापित होता है उसी को 'उत्पादक सम्बन्ध' कहते हैं। उसमें सम्मिलित है, भौतिक मूल्यों के पैदा करने में लोगों का पारस्परिक सम्बन्ध (सम्मिलित प्रयास, श्रम

[illegible], आपसी सहायता आदि), पैदा किये गये मूल्य के वितरण के भिन्न-भिन्न तरीके, (समान वितरण, किये गये श्रम के अनुसार वितरण आदि) और जो बहुत महत्त्वपूर्ण है, उत्पादन के साधनों के स्वामित्त्व का भिन्न-भिन्न रूप (सामूहिक स्वामित्त्व, निजी स्वामित्त्व)। उत्पादन के साधनों के स्वामित्त्व का प्रश्न ही उत्पादन सम्बन्धों का मुख्य प्रश्न है, चूंकि वह उत्पादन के क्रम में लोगों का सम्बन्ध और पैदा किये गये मूल्यों के वितरण का तरीका निर्धारित करता है। इसलिए, उत्पादन के साधनों के सामूहिक स्वामित्त्व में सभी लोग समान रूप से काम करते हैं और हर व्यक्ति भौतिक मूल्यों का अपना हिस्सा पाता है। उत्पादन के साधनों के व्यक्तिगत स्वामित्त्व में स्वामी (मालिक) को स्वयं काम करने की जरूरत नहीं पड़ती; जबकि इन साधनों से वंचित लोग उसके लिये काम करने को बाध्य होते हैं और वह पैदा किये गये भौतिक मूल्यों का बड़ा हिस्सा हथिया लेता है।

अतः उत्पादन सम्बन्धों का क्या चरित्र है, उत्पादन प्रक्रिया में विभिन्न सामाजिक तबकों की क्या हैसियत है और उनके क्या संबंध हैं यह निर्धारित करने के लिये औजारों और उत्पादन साधनोंपर स्वामित्व का स्वरूप ही बुनियादी तत्व है। उत्पादन सम्बन्ध, जैसा कि इस किताब में दिखाया जायगा, उत्पादक शक्तियों के विकास के स्तर द्वारा निर्धारित होता है।

हर नया पुश्त उत्पादक शक्तियों के विकास का एक खास स्तर में अस्तित्त्व पाता है। उत्पादन के सम्पूर्ण तरीके का विकास, अर्थात् उत्पादक शक्तियों के विकास का स्तर और उत्पादन सम्बन्धों का स्वरूप, संपूर्ण रूप से देखने से, मनुष्य की

चेतना से पृथक रहता है और विकास के बाह्य नियमों का अनुसरण करता है।

उत्पादन-सम्बन्ध या समाज का आर्थिक ढाँचा, ही सामाजिक आध्यात्मिक जीवन का, सभी सामाजिक विचारों, सिद्धांतों, और वैचारिक सम्बन्धों का, राजनीतिक, कानूनी और सांस्कृतिक संस्थाओं का आधार होता है; ये सब मिलकर ही आधारभूत समाज का ऊपरी ढाँचा बनाते हैं। ऊपरी ढाँचे के विभिन्न तत्त्वों का निर्धारण समाज के एक निश्चित आर्थिक ढाँचे से होता है और वे अपने तईं उत्पादन सम्बन्धों के विकास को, या तो प्रोत्साहित करके या उनके विकास में बाधा पहुँचा कर, प्रभावित कर सकते हैं। इस तरह एक निपुण नीति जो अर्थव्यवस्था की आवश्यकता का खयाल करती है, उसके विकास की गति को तेज बनाती है। शांति के लिए प्रयास करके अफ्रीका के नये विकासशील देश अपने आर्थिक विकास के लिए सबसे अनुकूल परिस्थिति बनाते हैं, वे अपने समाज की शक्ति को अपनी उत्पादक शक्ति के विकास में केन्द्रित कर रहे हैं और इस तरह अपने आर्थिक आधार, सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं के साथ विकसित होने में सहायता पहुँचाते हैं। उसके विपरीत युद्ध की नीति समाज के सम्पूर्ण भौतिक मूल्यों और उसकी उत्पादक शक्तियों को नष्ट कर सकती है। यह समाज के आर्थिक ढाँचे के विकास में बाधक होगी, इन देशों की अर्थव्यवस्था को कमजोर करेगी या उन्हें गुलामी तक पहुँचा देगी।

इस तरह मानव समाज के इतिहास का अध्ययन करने में, सिर्फ समाज के आर्थिक ढाँचे का ही अध्ययन नहीं करना

चाहिए बल्कि उसके सारी ढांचे की भी जाँच पड़ताल करनी चाहिए। मानव समाज के इतिहास की इस तरह ही छान-बीन के तरीके को इतिहास का भौतिकवादी विचार कहते हैं। इसको सबसे पहले कार्ल मार्क्स और फ्रेडेरिक एन्गेलसने विकसित करके एक वैज्ञानिक बुनियाद दी और इसकी प्रमाणिकता मानव जाति के सम्पूर्ण इतिहास से सिद्ध हुई है। इतिहास के भौतिकवादी विचार का विकास बाद में कामगार जनता के अनन्य नेता और सोवियत राज्य के संस्थापक व्लादिमिर इलिविच लेनिन (१८७०-१९२४) की रचनाओं में किया गया।

इतिहास का भौतिकवादी विचार मानव जाति के इतिहासको, खास ऐतिहासिक प्रकार के समाज का (अपने खास प्रकार के उत्पादन के तरीके और बाह्य ढांचे के साथ) विकास और परंपरा मानता है, जिसे सामाजिक आर्थिक ढांचे के नाम से लोग जानते हैं। वैज्ञानिक तरीके से यह प्रमाणित हुआ है कि मानव जाति निम्नलिखित सामाजिक-आर्थिक ढाँचे से गुजरी है : आदिम-सामुदायिक, दास-स्वामित्त्व, सामंती और पूंजीवादी। अब वह अगले ढाँचे में, साम्यवादी ढाँचे में, जिसका प्रथम चरण समाजवाद कहा जाता है, पहुँचने वाले संक्रमण के युग से गुजर रहा है। सामाजिक-आर्थिक ढाँचों का विकास एवं परम्परा सामाजिक विकास का वस्तुगत नियम है जो मनुष्य के प्रादुर्भाव और समाज की रचना के साथ चला आ रहा है।

यह पुस्तक बहुत संक्षेप में प्रथम तीन सामाजिक-आर्थिक ढाँचों का—आदिम-सामुदायिक, दास-स्वामित्त्व और सामन्ती ढाँचों का—वर्णन करती है।

अध्याय १

आदिम समुदाय

१. आदिम समुदाय की रचना

प्रागैतिहासिक समाज में उत्पादक शक्तियों का विकास : लगभग दस लाख वर्ष पहले मनुष्य श्रम के प्रथम औजार का निर्माण और उपयोग करके जानवरों की दुनिया से ऊपर उठा। प्रागैतिहासिक मनुष्य भी अन्य जानवरों की तरह बिल्कुल दुर्द्धर्ष प्राकृतिक वातावरण की दया पर आश्रित था और अन्य जानवरों से उसका रहन-सहन भिन्न नहीं था। घुमक्कड़ जीवन बिताने वाले हमारे पूर्वजों के झुन्ड जंगलों और नदी-घाटियों में भोजनकी तलाश में, खाने योग्य सभी पदार्थों का—कन्द-मूल और फल, धीरे चलनेवाले जानवर और सड़े हुए मांस तक—संग्रह करते हुए घूमते रहे। उस प्राचीनकाल में मनुष्य को कपड़ा या रहने की जगह बनाने का कोई ज्ञान नहीं था। अन्य सभी जानवरों की तरह वह भी शत्रुओं और विपरीत मौसम से बचने के लिए घने पत्तों के गुच्छों, चट्टानों की दरारों और गुफाओं में शरण लेता था।

तो भी आदमी में पहले ही ऐसे गुण थे जिससे वह अन्य जीवित प्राणियों से भिन्न था। उसने औजार पैदा करना शुरू किया जो बहुत तरह के कामों में आते थे। जैसे—कछुए की खोली तोड़ना, हड्डी या सुपारी तोड़ना। इनमें सबसे प्राचीन औजार नुकीले पत्थर या बिना बेंट की कच्ची टेंगारी थी।

आदमी पत्थर तोड़ कर और वाद में उसे टुकड़ा करके एक भारी और अजेय अस्त्र, एक किलोग्राम भारी वजन तक का, वना सका जिसका एक किनारा काटने लायक तेज और दूसरा हिस्सा पकड़ने लायक चिकना था। इसके जरिये आदमी छोटे जानवरों को मार सकता था और खाने लायक कन्द-मूल खोद सकता था। उसे वह वड़े शिकारी जानवरों के खिलाफ अस्त्र के रूप में इस्तेमाल कर सका और अपने लिए अधिक पौष्टिक खाद्य जुटाने के लिए उससे वड़े जानवरों का शिकार भी कर सका।

पत्थर के भाले के अलावा प्राचीन मानव ने लकड़ी के औजार, पत्थर से तेज की हुई खोदने की छड़ी, भाला आदि का भी इस्तेमाल किया था।

वहुत समय वाद ही—लगभग ५००-३०० हजार वर्ष पहले—आदमी भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए विशेष औजारों को पैदा कर सका, जैसे मारने, काटने कोड़ने, जानवरों का चमड़ा खींचने आदि के औजार। इन औजारों के वनाने में काफी कुशलता की आवश्यकता थी, लेकिन उनके जरिये आदमी को मेहनत करने में सहायता मिली और उत्पादन वढ़ा।

चोट करने के लिए विशेष औजारों को वनाकर आदमी अपने चारों तरफ फैले हुए जानवरों की दुनिया से कारगर संघर्ष कर सका। इससे धीरे-धीरे शिकार का विकास हुआ जो आदिम मानव के जीवन में उत्तरोत्तर वढ़नेवाली भूमिका अदा करने लगा। वह जलाशयों और जानवरां के मार्गों में रहने लगा जहाँ से वह आसानी से प्राणि-भोजन हासिल कर

सकता था। कभी-कभी शिकार के लिए अनुकूल परिस्थिति ने घुमक्कड़ जत्थों को और स्थानांतर करने से रोका और अपने अस्थाई आश्रय स्थानों को लम्बे अर्से के लिए निवास स्थान बनाने के लिए राजी कराया। इससे मनुष्य द्वारा निर्मित प्रथम अस्थाई निवास स्थान का उदय हुआ। इनमें पत्थर और पेड़ की डालियों से बने आश्रय स्थान और रहने के लिए अपनायी गयी गुफा आदि थी।

बहुत समय बाद प्राचीन मनुष्य के जीवन में एक महत्त्व-पूर्ण घटना हुई : उसने आग का उपयोग सीखा। हजारों वर्षों तक आग से सभी प्राणी डरते थे, आदमी भयभीत रहता था। धीरे-धीरे वह उसका मित्र बन गयी। आग कैसे पैदा की जाय, इसकी जानकारी नहीं रहने से आदमी जलती हुई डालियों को या अंगारों को, जो जंगल में आग लग जाने से बच जाता था, अपने निवास स्थान पर ले आता था। यह आदमी को ठंढ से बचाता था और जानवरों को डराता था। आग से उसने भिन्न-भिन्न प्रकार के उपकरणों का निर्माण, जैसे खोदने के किए खंतियों का आग में तपा कर तेज और कड़ा करके, किया। लेकिन शायद उसका सबसे बड़ा महत्त्व खाना पकाने के नये तरीके में था। मनुष्य ने भूनना, रोटी सेंकना और खाना उबालना शुरू किया। इससे उसे अधिक पौष्टिक भोजन, खास कर मांस, मिलने लगा, जिससे उसकी बुद्धि के विकास में सहायता मिली।

औजारों के निर्माण और आग के उपयोग से प्रागैतिहासिक मनुष्य के जीवन के तरीके में उल्लेखनीय परिवर्त्तन आया, क्योंकि श्रम के लिये नये सामाजिक सम्बन्धों की स्थापना

आवश्यक था। जानवरों की स्वाभाविक चेतना की जगह एक नया सम्बन्ध स्थापित हुआ जो पदार्थों के निर्माण में मनुष्य द्वारा अदा की गयी भूमिका पर आधारित था।

उत्पादन सम्बन्धों का विकास : अपने विकास के प्रारंभिक काल में मनुष्य दूसरे जानवरों की तरह झुण्ड में रहता था। वाद में जब मनुष्य ने सबसे पहले औजारों का इस्तेमाल शुरू किया तब उसने सामूहिक जीवन को जारी ही नहीं रखा, बल्कि उसे और विकसित किया। उस समय के बिल्कुल अविकसित औजारों को लेकर अपने लिए खाने का प्रवन्ध करना, जंगली जानवरों से अपनी रक्षा करना या अजेय प्राकृतिक वातावरण से वचाव करना मनुष्य के लिए,एकान्त जीवन में असंभव था। जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं को जुटाने के लिए मनुष्य एकताबद्ध हुए। प्रारंभ में ये श्रम सम्बन्ध बहुत कुछ कमजोर थे। जानवरों की स्वाभाविक चेतना प्रमुख रही और मनुष्य की जीवनचर्या में श्रम के क्रमिक विकास से ही इन छितरे हुए समूहों या झुण्डों का रूपान्तर अधिक स्थाई समूहों में हुआ जो सामूहिक रूप से किये गये श्रम (सामूहिक शिकार, मछलीमारना आदि) पर आधारित थे।

सामूहिक श्रम उस जमाने के सभी उत्पादनों का अनिवार्य हिस्सा था जब कि आदमी का मुख्य उद्देश्य भोजन करना था। उत्पादक शक्तियों के विकास के साथ पूरा समुदाय के सामूहिक श्रम की आवश्यकता क्रमशः लुप्त हो गयी। योनि या उम्र के आधार पर श्रम का विभाजन श्रम के नये औजारों के उदय का केवल स्वाभाविक परिणाम था। पुरुष जो औजारों की

अपेक्षा शारीरिक तौर से मजबूत होते हैं, मुख्यत: शिकार

खेलते थे और समुदाय को मांस, चमड़ा आदि प्रदान करते थे। औरतें और बच्चे खाद्य और मछली बटोरते; घर-द्वार का देखभाल करते और बाल-बच्चों का पालन-पोषण करते। इस तरह श्रम के विभाजन ने घुमक्कड़ जत्थों के सदस्यों के बढ़ते हुए परस्परावलम्बन को प्रभावित किया। ये जत्थे समान मूल और समान अर्थव्यवस्था से आपस में जुटे हुए थे और तुलनात्मक दृष्टि से सुदृढ़ गोत्र समुदाय या उत्पादन पर आधारित गोत्र में परिणत हुए।

उत्पादक शक्तियों के निहायत निम्न स्तर के विकास और श्रम की निम्न उत्पादकता के मूल स्वरूप गोत्र के सभी सदस्यों को, अपने अधीन सभी उपकरणों और उत्पादन के साधनों के के साथ, भौतिक सम्पत्ति के उत्पादन में हिस्सा लेना पड़ता था। चूंकि उपकरण आम सम्पत्ति थे, सम्मिलित रूप से जो कुछ भी पैदा करते थे वे उनकी आम सम्पत्ति होती थी और गोत्र के सदस्यों के बीच उनका समान वितरण होता था। इसलिए उस जमाने के गोत्र समुदाय में आम सम्पत्ति ही एक मात्र सम्पत्ति थी। सम्पत्ति की असमानता लोग नहीं जानते थे। सभी सदस्य समानाधिकार रखते थे। किसी सदस्य का प्रभाव गोत्र में उसके स्थान पर निर्भर करता था, अर्थात उत्पादन के क्रम में उसका स्थान। सबसे अधिक महत्व उसके अनुभव, कुशलता, शक्ति आदि को दिया जाता था। शिकार करने और अन्य आम कामों के लिए सबसे अधिक अनुभवी लोगों में से एक नेता का चुनाव किया जाता था जिसकी सत्ता गोत्र के सभी लोग मानते थे।

श्रम के विभाजन के साथ औरत समाज में प्रमुख भूमिका अदा करने लगी। शिकार के काम में प्राप्त होनेवाली जीविका के साधन की अपेक्षा उसके पारिवारिक उद्योग से मनुष्य को अधिक स्थाई और विश्वसनीय जीवनोपार्जन का साधन प्राप्त हुआ। इसके अलावा माता पूरे समुदाय की मालकिन थी और पूरे गोत्र की वह स्वामिन समझी जाती थी। वह जीवनयापन के लिए आवश्यक साधनों को पैदा करती और नयी पीढ़ी का पालन-पोषण करती थी। इस तरह आदिम गोत्र समुदाय में उसका प्रभाव और भूमिका लगातार वढ़ती गयी। उस तरह के समुदायों को मातृ-सत्तात्मक गोत्र कहते हैं।

आधुनिक किस्म के मनुष्य का निर्माण : ६० हजार वर्षों से अधिक पूर्व श्रम, बोली और सामाजिक जीवन जैसे तत्त्वों से मनुष्य शारीरिक तौर से ऐसे स्तर में विकसित हुआ जहाँ उसकी शरीर रचना और बाह्यरूप आधुनिक मनुष्य से शायद ही पृथक किये जा सकते थे। विज्ञान ने उसका नामकरण होमो सेपियन किया है।

होमोसेपियन के उदय से मनुष्य के शारीरिक विकास का अन्त हुआ और सामाजिक सम्बन्धों, भौतिक और आध्यात्मिक संस्कृति के विकास के लिए मार्ग प्रशस्त हुआ। इस दिशा में मानव जाति ने उल्लेखनीय सफलतायें हासिल की हैं और मनुष्य का उत्तरोत्तर विकास प्रतिदिन दिखाई पड़ सकता है।

अब तक तथाकथित आधुनिक मनुष्य यूरोप, एशिया और अफ्रीका में बस चुका था। बहुत दिन वाद, ३० से १५ हजार

वर्ष पहले बेरिंग जल डमरूमध्य के मार्ग से मनुष्य अमरीकी

महादेश में पहुँचा। देशान्तर गमन के समय अत्यधिक कठिनाइयों, जैसे अन्य लोगों से विछुड़ जाना और पालतू बनाने लायक जानवरों का अभाव आदि, के बावजूद अमरीका के प्रथम निवासी, इंडियन लोग, पूरे महादेश में फैल गये। मकई, आलू आदि महत्त्वपूर्ण खाद्यपदार्थों को सबसे पहले उपजाने वाले वे ही लोग थे। फिर भी इंडियनों के ऊपर जो भिन्न-भिन्न प्रकार की मुसीबतें आ पड़ीं उससे उनके सामाजिक विकास में बाधा उपस्थित हुई। सदियों बाद यूरोप के उपनिवेश बसाने वालों ने करीब-करीब उनका पूरा सफाया कर दिया। लगभग उसी समय, करीब दस हजार वर्ष पहले, मनुष्य आस्ट्रेलिया महादेश में बसने लगा। अमरीकी इंडियनों को जिन परिस्थितियों का मुकाबला करना पड़ा था उससे भी कठिन परिस्थिति रहने से आस्ट्रेलिया के कबीलों का विकास अवरुद्ध रहा। यद्यपि आस्ट्रेलियावासियों की सफलता प्रशंसनीय थी तो भी उससे १९वीं शताब्दी के उपनिवेश बसानेवालों द्वारा महादेश के बहुत से आदिम कबीलों का निर्दयतापूर्वक सफाया किया जाना रुक नहीं सका।

नये इलाकों में बसने से मनुष्य भिन्न प्रकार की भौगोलिक परिस्थिति के संपर्क में आया। कुछ लोग उष्ण कटिबन्ध के गीले जंगलों में बस गये, कुछ सूर्य की अनवरत किरणों में, मरुभूमि में बसे या उत्तरी बर्फों में; लेकिन कुछ लोग नातिशीतोष्ण आब-हवा ही जान सके। मनुष्य अपनी परिस्थति के अनुकूल अपने को बनाने लगा। इस तरह खास तरह के लोगों की विभिन्न जातियाँ बनीं जो बहुत अप्रमुख, मामूली गुणों

(चमड़े का रंग, नाक, ओंठ आंखें, केश आदि,) से पृथक की जा सकती थी। भिन्न-भिन्न जलवायु में रहनेवाले भिन्न-भिन्न प्रकार के लोगों के पृथक्करण का वड़ा प्रभाव रूपीकरण में पड़ा है। होमोसेपियन के रूपीकरण के बाद के काल में अस्पष्ट जातीय लक्षण स्पष्ट हुए और उनका मनुष्य की अवयव-रचना पर कोई खास असर नहीं था। सभी मानव प्राणी एक ही मूल के हैं। सभी जातियों की जनता शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक क्षमता में समान है। जैसा कि हमने ऊपर बताया है, जातिगत लक्षणों का विकास मनुष्य की अवयव-रचना का लम्बे अरसे तक प्रतिकूल प्राकृतिक परिस्थिति के अनुकूल अपने को बनाने से, हुआ है। अब मनुष्य शारीरिक तौर से सुस्थिर बन गया है, इसलिए वह बाद में अवयवों के परिवर्त्तनों द्वारा परिस्थिति के अनुकूल अपने को और नहीं बना सकता। प्रतिकूल जलवायु से अपनी रक्षा करने के लिए तरह-तरह के साधनों का निर्माण करके अपनी परिस्थिति के अनुसार जीवन बिताने के लिए उसने सीख लिया है। (उष्ण कटिबंध में एक टोप पहन कर वह अपना सिर अधिक गर्म होने से बचाता है)।

उत्पीड़न की औपनिवेशिक नीति को उचित ठहराने के लिए साम्राज्यवादियों ने बहुत से अवैज्ञानिक सिद्धांत गढ़ कर यह बताने का प्रयास किया है कि "काले लोगों" पर "गोरों" का प्रभुत्व पूर्वनिश्चित है और अफ्रीका, एशिया और लैटिन अमरीका के लोगों की निकृष्टता और पिछड़ेपन की कुंजी जाति भेद में है। हमने ऊपर दिखाया है कि सभी जाति के लोग अवयवों के आधार पर समान हैं। जनता का पिछड़ापन ऐतिहा-

सिक विकास के खास तत्वों से निर्धारित होता है। इतिहास ने स्वयं पर्याप्त प्रमाण दिया है कि सभी जनता की एक उन्नत संस्कृति थी जिसका उपनिवेशवादियों के आने के पहले वे विकास कर रहे थे। यूरोपीय और अमरीकी साम्राज्यवादियों की क्रूर औपनिवेशिक नीति से ही अफ्रीका, एशिया और लैटिन अमरीका के लोगों का विकास एक लम्बे अरसे के लिए रुक गया, उनकी सफलताओं को नष्ट कर दिया गया और उनके सवसे योग्य प्रतिनिधियों को औपनिवेशिक कारा में बन्द रखा गया और प्रायः पूरी जनता का सफाया किया गया। आज अफ्रीका, एशिया और लैटिन अमरीका की वहुत सी जनताने जो अभूतपूर्व सफलता हासिल की है उससे सभी रंगभेद के सिद्धांत व्यर्थ साबित हुए हैं। उन्होंने उपनिवेशवाद का जुआ उतार फेंका हैं और स्वाधीनता के मार्ग में पैर रखा है। साम्राज्यवादी इन "सिद्धान्तों" का सहारा इसलिए लेता है कि जनता में अलगाव पैदा करे और एक आणविक युद्ध के खतरे से वचने के लिए और शांति की स्थापना के लिए उनके सम्मिलित संघर्ष को रोके। वे इन "सिद्धान्तों" का उपयोग, अन्तरराष्ट्रीय मजदूर आन्दोलन की एकता की जड़ खोदने और "गोरी जाति" और "काली जाति" के मजदूरों के बीच दुश्मनी का बीज बोने, अफ्रीका, एशिया और लैटिन अमरीकी जनता के राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के खिलाफ यूरोपीय मजदूरों के संघर्ष को उभाड़ने के लिये और खासकर साम्राज्यवाद के खिलाफ समाजवादी शिविर की जनता के संघर्ष के विरुद्ध करते हैं। नीग्रो जाति के खिलाफ साम्राजवादियों द्वारा की जानेवाली भेद-नीति और काली जनता के विकास के खास

मार्गों का तथाकथित सिद्धान्त प्रतिपादित करने के यही असली कारण हैं ।

कोई वैज्ञानिक आधार नहीं रहने से ये "सिद्धान्त" सभी जाति-भेद के सिद्धान्तों के समान उन प्रतिक्रियावादी शक्तियों की स्वार्थ साधना ही कर सकते हैं, जो सभी जनता के प्रगतिशील विकास का विरोध करते हैं, जो उनकी सच्ची आजादी और स्वतंत्रता का विरोध करते हैं ।

२. आदिम समुदाय का स्वर्ण युग

आदिम-सामुदायिक व्यवस्था की उत्पादक शक्तियों का और आगे विकास: पत्थर के औजारों और उत्पादक शक्तियों के विकास की अन्य सफलताओं के फलस्वरूप मानव समाज का विकास हुआ । मनुष्य ने सबसे पहले पत्थर के औजारों को आपस में रगड़ कर आवश्यक आकार में बनाया; उसके बाद उसने पत्थर के तेज टुकड़ों को तोड़कर लकड़ी के बेंट से जोड़ने को सीखा । बाद में उसने पत्थरों को चिकना बनाने, पत्थरों के नोकदार भाले, चाकू, हसुआ और काटने के अन्य औजार बनाने को सीखा । इन सभी नयी पद्धतियों ने मनुष्य के श्रम की उत्पादकता को बढ़ाया ।

उस जमाने का एक सबसे महत्त्वपूर्ण आविष्कार तीर-कमान था जिससे शिकार करना एक लम्बे अरसे के लिए प्रमुख आर्थिक उद्योग रहा। इस काम से मनुष्य को सिर्फ मांस-भोजन ही प्राप्त नहीं हुआ बल्कि चमड़े भी मिलने लगे जिससे वह कपड़े और

निवास स्थान तक बना सके और सींग एवं हड्डियाँ मिलीं जिनसे वे औजार बनाते थे। मछली मारनेके साथ-साथ शिकार का विकास हुआ जिसके फलस्वरूप नयी कारीगरी और रहन-सहन का विकास हुआ। श्रम की उत्पादकता के विकास के साथ मनुष्य ने खाद्यपदार्थ बटोरने का काम छोड़ दिया और धीरे-धीरे एक स्थायी जीवनचर्या अपनायी। उसने प्रथम स्थायी घर और निवासस्थान बनाना शुरू किया। ये अक्सर गुम्बज जैसे घर होते थे जो झीलों एवं नदियों के छिछले इलाके में बनाये जाते थे।

श्रम की उत्पादकता के विकास और स्थिर जीवन में संक्रमण से मनुष्य आदिम खेती का विकास कर सका। उसने यह जान लिया कि कुछ पौधों के दाने अपने निवास स्थान के पास वह बो सकता है और इस तरह अपने लिए भोजन प्राप्त कर सकता है। बाजरा, जई, जौ और गेहूँ मनुष्य द्वारा बोये गये प्रथम फसलें थीं। स्थायी खेती सबसे पहले फसल के लिए अनुकूल इलाकों में प्रकट हुई (मेसोपोटोमिया, नील घाटी, भारत, ईरान, यूक्रेन आदि में) और धीरे-धीरे इन इलाकों का मुख्य धंधा बन गयी।

करीब-करीब सभी वर्त्तमान फसलें आदिम सामुदायिक गोत्रों के जमाने में ही पैदा की गयीं थीं।

स्थाई खेती में संक्रमण होने से मनुष्य अपनी परिस्थिति से अधिक स्वतंत्र हुआ। तुलनात्मक दृष्टि से, खेती में श्रमकी उत्पादन स्तर में वृद्धि होने से वह प्राकृतिक विपदाओं में इस्तेमाल करने के लिए खाद्यपदार्थ का कुछ भण्डार बना सका जिसे फसल नष्ट होने, या शिकार की सुविधा न होने पर इस्तेमाल कर सके।

लगभग उसी जमाने में पशुपालन भी शुरू हुआ था। जंगली जानवरों को घेरे के भीतर खदेड़ कर मनुष्य ने अपने लिए ताजा मांस पाने की व्यवस्था की। धीरे-धीरे मनुष्य ने देखा कि जानवरों को पालतू बनाया जा सकता है और पालकर उनका वंश भी बढ़ाया जा सकता है। सबसे पहले वे मांस और दूध का स्रोत मान लिये जाते थे और बाद में उनका इस्तेमाल ढोने के काम में शुरू हुआ।

सर्वप्रथम पालतू बननेवाले जानवरों में कुत्ते थे, जिनका इस्तेमाल शिकार में होता था और गाय, भेड़ें, बकरी एवं सूअर थे। आठ-नौ हजार वर्ष पहले पशुपालन मिस्र, अन्टेरियर तथा मध्य एशिया, भारत, चीन, यूरोप और अफ्रीका में बड़े पैमाने पर होने लगा।

पशुपालन से मनुष्य को सिर्फ भोजन ही नहीं मिला बल्कि उसे अपना अस्तित्व बचाने के लिए आवश्यक चमड़ा और अन्य साधन भी हासिल हुए।

इस जमाने में खेती और पशुपालन ही एकमात्र धंधा नहीं था। कुछ ऐसे कबीले थे जो कठिन भौगोलिक परिस्थिति में रहते थे और मुख्यतः शिकार एवं खाद्य-संग्रह पर जीवन निर्वाह करते थे। इन कबीलों ने तीर और कमान का विकास किया, उन्होंने जानवरों के लिए फंदा डालना सीखा, चमड़ा पकाने का अधिक विकसित तरीका आदि चलाया। भोजन संग्रह करने वालों ने इर्द-गिर्द के पेड़-पौधों की दुनिया का अच्छा ज्ञान हासिल किया तथा बहुत-सी जड़ी-बूटियों के रोगनाशक गुण और पौधों के रेशे का इस्तेमाल सीख लिया। नये औजारों का

उत्पादन करके और अपने तथा पड़ोसी कबीलों के अनुभवों को

एकत्र करके उन्होंने अपना अर्थतन्त्र अधिक उन्नत आधार पर विकसित किया।

उत्पादन सम्बन्धों में परिवर्तन : आदिम खेती और पशु-पालन ने किसी नये प्रकार का संपत्ति-स्वामित्त्व स्थापित नहीं किया। उत्पादन के साधनों का आम स्वामित्त्व ही उस जमाने का एकमात्र संपत्ति-स्वामित्त्व था, क्योंकि खेती करने तथा घेरे में जानवरों का पालन करने में पूरे कबीले का संयुक्त प्रयास आवश्यक था। इस तरह सामूहिक श्रम से उत्पादन के मुख्य साधन—जमीन, शिकार का इलाका आदि—पर सामूहिक स्वामित्व पैदा हुआ। घरेलू सामानों का भी सामूहिक स्वामित्त्व था, क्योंकि लोग बड़े सामुदायिक आवासगृहों में रहते थे, जो कभी-कभी कई सौ लोगों की साझेदारी में होता था।

स्थिर जीवन में संक्रमण के साथ भिन्न-भिन्न कुलों के बीच आर्थिक और उत्पादन सम्बन्ध मजबूत हुआ। जंगली जानवरों से अपनी रक्षा करने तथा अपना खाद्य भण्डार और बस्तियों को विरोधी पड़ोसियों के छापे से बचाने के लिए आसपास के कुल कबीलों में सूत्रबद्ध हुए। कबायली सम्बन्धों से कबायली संपत्ति का उदय हुआ। इस तरह कबीला द्वारा रहने, शिकार करने और मछली मारने के लिए इस्तेमाल होनेवाला इलाका कबीलों का संयुक्त अधिकार-क्षेत्र माना जाता था। कुलों का कबीलों में गठन की उत्पादन की कुशलता तथा कबायली भाषा और संस्कृति के प्रसार में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

कबायली संपत्ति प्रकट होने के बावजूद प्रत्येक कुल अपने अन्दरूनी मामलों का फैसला करने तथा शिकार की भूमि आदि

को कुल की सम्पत्ति के रूप में रखने की स्वतन्त्रता को कायम रखा। अधिक व्यापक ढंग की कबायली एकता कायम होने के साथ सामान्य संपत्ति ने अधिक व्यापक रूप धारण किया, यद्यपि वह तत्त्वतः वैसा ही रहा।

कुल और कबायली शासन की संपूर्ण परिपाटी आदिम सामुदायिक उत्पादन सम्बन्धों के अनुरूप रही। कुलों और कबीलों के तमाम मामले कबीलों के सदस्यों द्वारा चुने गये प्रमुखों और कबायली परिषदों के हाथ में थे। प्रमुख का प्रभाव उसकी व्यक्तिगत योग्यता, उसका अनुभव, शिकार की निपुणता, युद्ध में बहादुरी और बुद्धिमत्ता पर निर्भर करता था। प्रमुख की सत्ता मौरूसी नहीं हो सकती थी और न उन्हें कबीले के अन्य सदस्यों के मुकाबले में संपत्ति पर कोई विशेष अधिकार होता था। आदिम सामुदायिक समाज में राज्य जैसी संस्था नहीं थी। कुलों और कबीलों की सरकार कबायली जनतन्त्र के सिद्धान्त पर आधारित थी, अर्थात् सामूहिक मामलों में समाज के सभी सदस्यों का समान योगदान।

कला और धर्म का उदय : जैसे-जैसे मनुष्य विकसित होता गया वह अपने इर्द-गिर्द की दुनिया से—जिस समाज में वह रहता है—परिचित होता गया और सबसे पहले भौतिक सम्पत्ति के सामाजिक उत्पादन से। प्रत्येक सामाजिक स्वरूप की अलग-अलग प्रतिमा उसकी चेतना में प्रतिष्ठित हुई।

मनुष्य ने अपने सामाजिक अस्तित्व के विभिन्न दृश्यों को चित्रों में प्रकट करने का प्रयास किया। इससे कला का उदय हुआ जो वास्तविकता के प्रथम प्रतिबिम्बों में एक था।

छोटे-बड़े आकार के पत्थर और चट्टान मनुष्य को अक्सर भिन्न-भिन्न जानवर जैसे लगते थे, इसलिए उसने उपयुक्त चट्टानों को काट-छाँट कर, रंग कर, उन्हें अधिक स्पष्ट वनाना शुरू किया। उसने मनुष्य की प्रतिमा बनाना सीखा और गुफाओं की दीवारों को जीवन के चित्रों से ढँक दिया। ये अक्सर बहुत यथार्थ हुआ करते थे, और अक्सर शिकार के दृश्य और अन्य दैनिक कार्यों को चित्रित करते थे। मनुष्य के दैनिक जीवन ने उन्हें दीवाल-चित्रों के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान किया।

इस तरह, प्रारंभ से ही, कला, मनुष्य की परिस्थिति की, एक खास प्रतिमा के रूप में प्रतिविम्ब थी।

जब आदिम समाज चोटी पर पहुँचा हुआ था तब प्राकृतिक दृश्यों के सम्बन्ध में, जो उसके इर्द-गिर्द था, आदमी का ज्ञान ऊपरी दृष्टिकोण से काफी ठोस हो गया था, लेकिन उन दृश्यों के सार के बारे में सही समझदारी के लिए वह पर्याप्त नहीं था। आदिम मनुष्य विभिन्न दृश्यों के बीच के सम्बन्ध, उनकी परम्परा और जीवन पर उनके असर की ठीक व्याख्या नहीं कर सकता था। प्राकृतिक शक्तियों के सामने आदमी की निरन्तर असहायता और प्रकृति के नियमों के बारे में उसके अपर्याप्त ज्ञान के कारण धार्मिक विचारों का प्रारम्भ हुआ, जो प्रकृति का एक बेतुका विकृतीकरण है, जिसके अनुसार किसी अलौकिक शक्ति का अस्तित्व माना गया जो मानवजीवन के हर पहलू को नियन्त्रित करती है।

धार्मिक विचारों का उदय ३० से ४० हजार वर्ष पहले नहीं हुआ। इसी जमाने में मनुष्य ने इस काल्पनिक विचार को

जन्म दिया कि जानवर मनुष्य के पूर्वज और अभिभावक थे—टोटेमिज्म (Totemism)। एक खास जानवर की स्तुति और चापलूसी करके मनुष्य उसकी कृपा हासिल करना और इस तरह अपनी जिन्दगी का भार हलका करने का प्रयास करता था। वह अलौकिक शक्ति से युक्त अभौतिक "आध्यात्मिक प्राणियों" पर विश्वास करने लगा (पशुवाद)। टोटेमिज्म के समान पशुवाद भी प्राकृतिक शक्तियों को समझने की आदिम मनुष्य की असमर्थता के कारण उत्पन्न हुआ था। उसने प्रकृतिका अपने साथ मिलान किया, प्रकृति को एक अभौतिक हस्तीके रूप में चित्रित किया जो मानवीय गुणों और अलौकिक शक्तियों से परिपूर्ण है। उसने प्राकृतिक शक्तियों—बादलों का गरजना, बिजली की चमक, नदियाँ, जंगल—को देवता मानकर बादल की कड़क, बिजली की चमक, पानी आदि के देवताओं की पूजा की। इससे विभिन्न प्रकार के मंत्र, तंत्र और मूर्त्तिपूजा की विधियों का उदय हुआ। अपने भगवान के लिए बलि चढ़ा कर मनुष्य ने उपास्य अलौकिक शक्ति को प्रसन्न करने का प्रयास किया।

चूँकि मृत्यु मनुष्य की बुद्धि के परे की बात थी, उससे उनमें भय और मिथ्या संदेह पैदा हुआ। खास तौर से उन शक्तिशाली योद्धाओं और प्रमुखों की मृत्यु से वह डरता था जो समुदाय के आम लोगों पर अपना दबदबा रखते थे। वह मृतकों के शरीरों और उनकी प्रतिमा तक में अलौकिक शक्ति मानने लगा। धीरे-धीरे मनुष्य में एक काल्पनिक दुनिया के अस्तित्व का विचार पैदा हुआ जो कब्र से परे, मरे हुए लोगों की आत्माओं का निवास-स्थान, मानी जाती थी।

इस तरह प्रकृति के सामने मनुष्य की असहायता से प्राचीन धर्मों का उदय हुआ। इससे मनुष्य और भी अज्ञान और अशक्त हालत में हो गया और दुनिया और उसके नियमों को जानने से वंचित रहा जिससे उसकी प्रगति में बाधा हो गई।

३. आदिम सामुदायिक व्यवस्था का छिन्न-भिन्न होना

लौह युग में उत्पादक शक्तियों का विकास : ईसा के पूर्व आठवीं सहस्राब्दी के करीब एशिया, अफ्रीका और यूरोप में मनुष्य ने औजारों के बनाने में शुद्ध धातुओं का इस्तेमाल करना सीखा। लेकिन धातुओं का वास्तव में बड़े पैमाने पर इस्तेमाल ई० पू० छठी सहस्राब्दी में ही शुरू हुआ जब मनुष्य ने धातुओं को गलाना और मिश्रित धातु बनाना सीखा। धातु के औजारों से वह श्रम की उत्पादकता बढ़ा सका और समाज की सभी उत्पादक शक्तियों के विकास में उल्लेखनीय सफलता मिली।

धातुओं के औजार इस्तेमाल करके मनुष्य ने पत्थर, सींग, और लकड़ी के काम करने में अधिक कुशल तरीकों का आविष्कार किया। उसने धातु की कुदालियाँ, हंसिया और अन्य कृषि के औजार बनाना सीखा और अपनी प्रथम मशीन (यन्त्र)—कुम्हार का चक्का और आदिम करघा—बनाया। धातुओं के औजारों का खेती के विकास में उल्लेखनीय असर पड़ा। गर्म और सूखे इलाकों में, जहां खेती पहाड़ की तराइयों में ही संभव थी, मनुष्य ने सिंचाई के लिए नहरों और बांधों का निर्माण किया।

उपजाऊ घाटियों में, सूखे मौसम में नदियों से खेत तक पानी ले जाने के लिए नहरों का निर्माण किया गया। कम उपजाऊ इलाके में मनुष्य ने पेड़ों को काट कर और उन्हें जला कर खेती के लिए जमीन साफ किया। जब जमीन ऊसर हो जाती तो आदमी नयी खेती के लायक जमीन की खोज में निकल पड़ता था। प्राचीन काल में खेती के इस तरीके का व्यापक इस्तेमाल होता था।

सींची हुई और जलायी गयी जंगली जमीन में खेती के लिये मुख्य रूप से पत्थर की कुदाली और बाद में धातु के बने औजार इस्तेमाल किये जाते थे जिससे कुदाली-खेती का नाम प्रचलित हुआ, जो उस जमाने की एक खास विशेषता थी। धातु की कुदाली के इस्तेमाल से कृषि का स्तर उन्नत हुआ और अनुकूल इलाकों में रहनेवाले लोगों की प्रमुख जीविका खेती बन गयी। जिन कबीलों की मुख्य उपजीविका शिकार खेलना था, वे धीरे-धीरे पशुपालन करने लगे जो अधिक लाभदायक था।

मानव समाज की उन्नति की दिशा में खेती और पशुपालन का विकास एक महत्त्वपूर्ण कदम था। मनुष्य के कठोर श्रम ने दुनिया को नये पेड़ पौधे और आज के सभी पालतू जानवर प्रदान किये। मनुष्य भौतिक संपत्ति जमा करने लगा। श्रम का उत्पादन बढ़ा और उसके साथ समाज का और तेजी से विकास हुआ।

भौतिक संपत्ति के उत्पादन में परिवर्तन : खेती और पशु-पालन में विभिन्न कबीलों द्वारा विशेष योग्यता प्राप्त करने के फलस्वरूप श्रम का प्रथम महान सामाजिक विभाजन हुआ।

पशुपालन और खेती करनेवाले कबीलों की उत्पादक शक्तियों

का विकास उनकी खास उपजीविका से गाढ़े तौर पर सम्बन्धित था और उनके पारस्परिक सम्बन्धों पर आधारित था। इन सम्बन्धों के कारण गधे, गाय और घोड़े खेती में ढोनेवाले जानवरों के रूप में इस्तेमाल होने लगे, और इसके फलस्वरूप धातु के हल जैसे नये औजार काम में आने लगे जो ई० पू० पांचवीं सहस्राब्दी में मेसोपोटामिया और ईरान की समतल भूमि में दिखायी पड़े।

धातुओं के उपयोग से अन्य तीव्र परिवर्त्तन हुए। खनिज धातुओं को ढालना, धातु और बर्त्तन के उद्योग आदि के लिए विशेष प्रकार के औजार एवं आवश्यक ज्ञान और कुशलता रखनेवाले एक विशेष प्रकार के लोगों की आवश्यकता थी। कारीगर समाज का एक पृथक गुट बन गया। उनके श्रम का बड़ा हिस्सा समाज के लिए आवश्यक औजार एवं अन्य वस्तुओं के निर्माण में लगाया जाता था, अपने उपभोग की वस्तुओं को पैदा करने में नहीं। इस तरह श्रम का दूसरा विभाजन संभव हुआ जब कि समुदाय के भीतर उत्पादक शक्तियों के विकास के फलस्वरूप तमाम सदस्यों की आवश्यकताओं की कमोबेश पूर्त्ति की जा सके, जिनमें वे लोग भी शामिल थे जो खाद्यपदार्थों का खुद उत्पादन नहीं करते थे लेकिन सामाजिक दृष्टि से आवश्यक श्रम में लगे हुए थे।

प्रथम और द्वितीय श्रमविभाजन के आवश्यकतानुसार विभिन्न समुदायों के बीच का सम्बन्ध सुदृढ़ बना। पशुपालन में लगे हुए समाज के श्रम की उत्पादकता में वृद्धि होने से जानवर, चमड़े, ऊन, मांस और पशुओं से बननेवाली वस्तुओं

का अतिरिक्त उत्पादन होने लगा। लेकिन उस तरह

के समुदायों के पास अनाज, सब्जी और कृषि उत्पादनों का अभाव था। दूसरी ओर खेतिहर समुदायों के पास अतिरिक्त कृषि उपज थी, लेकिन पशुओं से बननेवाली वस्तुओं का अभाव था। इस तरह विभिन्न समुदायों के बीच आर्थिक आदान-प्रदान की स्थिति पैदा हुई। चूँकि समुदाय में पैदा की गयी चीजें सामूहिक श्रम का फल थीं और इसलिए आम संपत्ति थीं, अतः आदान-प्रदान पूरे समाज के बीच होता था। इस तरह अदला-बदली की गयी चीजें भी समुदाय के सभी सदस्यों की आम संपत्ति होती थीं जिस तरह उनके सामूहिक श्रम की पैदावार होती थी। अदला-बदली धीरे-धीरे स्वाभाविक क्रिया बन गयी, उत्पादन से संबद्ध हो गयी और उत्पादन को प्रभावित करने लगी। विनिमय के मुख्य साधन जानवर थे और बाद में धातु, धातु के सामान, औजार, गहने आदि भी।

उत्पादन सम्बन्धों में परिवर्त्तन से आम लोगों के सामाजिक जीवन में सूक्ष्म परिवर्त्तन हुआ। पशुपालन और शिकार पुरुषों का पेशा बन गया। पशुपालक समाज में स्त्री पर पुरुष की आर्थिक श्रेष्ठता के विकास का यह कारण बना—पुरुष का श्रम समुदाय की भौतिक संपत्ति का मुख्य साधन बन गया। खेतिहर समुदायों में इस तरह का परिवर्त्तन बहुत बाद में हुआ। लेकिन जब आर्थिक जीवन में खेती की मुख्य भूमिका होने लगी, तब सब से मजबूत पुरुष जमीन जोतने के लिए चुने जाने लगे। हलका इस्तेमाल शुरू होने से खेती अकेले पुरुष का धंधा बन गयी।

चूँकि पशुपालक और खेतिहर समुदायों में औरतों का

अधिक से अधिक काम घरों में सीमित रहा, अतः भौतिक संपत्ति के अर्जन में उसका महत्त्व कम हो गया । वस्तुओं के उत्पादनकर्त्ता के रूप में पुरुष का महत्त्व जैसे जैसे बढ़ता गया और समुदाय का कल्याण पूरे तौरसे उस पर निर्भर होता गया, उसने सामाजिक जीवन में नेतृत्वकारी भूमिका अपना ली। जिस समाज में पुरुष नेतृत्वकारी भूमिका अदा करता है, उसे पितृ-सत्तात्मक समुदाय कहा जाता है । पहले की तरह कुल का प्रधान—अब एक पुरुष–सभी बालिग स्त्री-पुरुषों द्वारा चुना जाता था; उसकी सत्ता नैतिक ढंग की थी, जो केवल उसके अधिकार एवं योग्यता की मान्यता पर आधारित थी । इन खास परिवर्त्तनों के बावजूद समाज का वर्गों में विभाजन नहीं हो पाया था ।

आदिम समुदाय के भीतर उत्पादक शक्तियों का संकट: उत्पादन अब इस हद तक बढ़ गया कि मनुष्य का श्रम उत्पादक और उसके परिवार की आवश्यकताओं से अधिक पैदा करने लगा । श्रम के इस पैदावार को अतिरिक्त उत्पादन कहते हैं और उसे पैदा करने वाले श्रम को अतिरिक्त श्रम कहते हैं । अतिरिक्त उत्पादन के उदय से मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का मार्ग खुल गया ।

उस जमाने में भौतिक संपत्ति के उत्पादन के लिए लोगों को बड़ी उत्पादक इकाई में एकत्र करने की आवश्यकता नहीं रह गयी थी । कुल के सदस्य भिन्न-भिन्न धंधे करने लगे और विभिन्न श्रम की प्रक्रिया में उत्पादकता में विभिन्नता रही । सामूहिक श्रम में समुदाय के सदस्यों का स्थान भी बदलने लगा । इससे उत्पादन सम्बन्धों और विकसित होने वाली

उत्पादन शक्ति के स्तर में असंगति पैदा हुई। उत्पादन के साधनों पर सामूहिक स्वामित्व और समुदाय के सदस्यों के बीच श्रम की पैदावार का समान वितरण पर आधारित पुराने उत्पादन सम्बन्ध धीरे धीरे वेड़ी बन गए, उत्पादक शक्तियों के विकास में बाधक बन गये। अतः लोगों के बीच नये उत्पादन सम्वन्धों की स्थापना के लिए उन्हें तोड़ना अनिवार्य हो गया।

दल समुदाय के बदले पितृसत्तात्मक परिवार समाज की आर्थिक इकाई बन गया। परिवारों के बीच रक्त सम्बन्धों की जगह आर्थिक सम्बन्धों ने ली। कुल समुदाय को आम आर्थिक हित पर आधारित क्षेत्रीय या पड़ौसी समुदाय के लिए हटना पड़ा।

क्षेत्रीय समुदाय में पुराने सम्बन्धों को आंशिक तौर पर कायम रखा गया। उदाहरण के लिए जमीन, जो उत्पादन का मुख्य साधन थी, अब भी आम सम्पत्ति मानी जाती थी, यद्यपि प्रत्येक परिवार अपनी निजी जमीन जोतता था और अपने घर-द्वार का स्वयं प्रवन्ध करता था। पशु पालक कबीलों में जानवरों का समूह वैयक्तिक परिवारों की संपति बन गया। पितृ सत्ता प्रधान परिवारों द्वारा पैदा की गयी चीज़ें परिवार की सम्पत्ति बन गयीं। जानवर, घरेलू सामान, उत्पादन के विभिन्न साधन और व्यक्तिगत श्रम का उत्पादन निजी स्वामित्व के प्रथम आधार थे, जो घटनेवाली आम सम्पत्ति की जगह पर विकसित हुए।

समुदाय के सदस्यों के बीच प्रचलित पहले की समता को नष्ट करके, निजी संपत्ति अब पैतृक बन गयी। निजी

संपत्ति के उदय से समुदाय के व्यक्तियों के बीच विनिमय शुरू

हुआ और उसके चलते उसके सदस्यों के बीच संपत्ति की असमता पैदा हुई।

बाद में श्रमकी उत्पादकता के विकास से भौतिक संपत्ति पैदा करने वाले मनुष्य के व्यक्तिगत स्वामित्व का उदय हुआ। जब तक मनुष्य केवल अपनी निजी आवश्यकता की पूर्त्ति के लिए उत्पादन करता था, तब तक आदमी द्वारा आदमी का शोषण नहीं हो सका।

लेकिन जब वह अपनी सीमित आवश्यकता से थोड़ा अधिक पैदा करने लगा तब उत्पादन के साधनों के स्वामी के लिए मनुष्य से काम कराना सम्भव हो गया। श्रमिकों के अतिरिक्त उत्पादन को मालिक हड़प लेता था।

सबसे पहले शोषित होनेवाले युद्धबन्दी थे। उनको पकड़ने वालों ने उन्हें गुलाम बना लिया। वे सभी अधिकारों से वंचित कर दिये जाते थे और उन्हें तब तक ही रखते थे, जब तक वे अपने स्वामी के लिए अतिरिक्त पैदावार कर सकें। यदि गुलाम बोझ बन जाता था, तो मालिक को अधिकार था कि उसके साथ जो चाहें, करें।

इस तरह आदिम समुदाय के अंतिम चरण में स्वतंत्र उत्पादकों के बीच गुलामों का उदय हुआ। गुलाम अपनी आवश्यकताओं की पूर्त्ति के बदले अपने स्वामी की संपत्ति बढ़ाने के लिए काम करता था। गुलामी प्रथा के उदय ने मानव जाति के इतिहास में एक नया पृष्ठ खोला और आदमी द्वारा आदमी के शोषण का प्रादुर्भाव हुआ। समाज, जो पहले उत्पादन के साधनों के आम स्वामित्व पर आधारित था, अब श्रम के साधनों

[illegible] के अनुसार तीन मुख्य सामाजिक गुटों में बट गया। प्रथम थे गुलाम जिनके पास किसी भी तरह की निजी संपत्ति नहीं थी और जो स्वयं अपने स्वामी की संपत्ति थे। द्वितीय थे गुलामों के स्वामी जो उत्पादन के साधनों के स्वामी होनेके नाते उन गुलामों के भी स्वामी होते थे, जिनका वे शोषण करते थे। और आखिरी थे समुदाय के स्वतंत्र सदस्य जो अपने छोटे से कुटुम्ब का अपने ही श्रम, साधन और उपलब्ध औजारों के जरिये भरण-पोषण किया करते थे। अधिकांश स्वतंत्र व्यक्ति धीरे-धीरे गरीब हो गये और गुलामों में परिणत हुए।

समाज बड़े सामाजिक समूहों में बट गया जिन्हें वर्ग कहते हैं और जिनका चरित्र उत्पादन के साधनों के साथ उनके सम्बन्ध से निर्धारित होता है। स्वतंत्र समुदाय के सदस्यों का श्रम भौतिक संपत्ति का मुख्य स्रोत नहीं रह गया था। आदिम-सामुदायिक समाज जीर्ण हो गया और उसकी जगह पर एक नया सामाजिक आर्थिक ढाँचा—दास प्रथा—निर्मित हुआ।

अध्याय २

गुलाम रखनेवाला समाज (दास-स्वामी समाज)

१. एशिया और अफ्रीका के गुलाम रखनेवाले समाज

इस तरह आदिम-सामुदायिक समाज में पहली बार एक नये शोषक-वर्ग—गुलामों के मालिक—का उदय हुआ । इनके अभ्युत्थान और दास-प्रथा के प्रसार से गुलाम के स्वामी वाले समाज का आविर्भाव हुआ । गुलामी ढंग का उत्पादन मनुष्य के विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था क्योंकि उसने समाज के एक अंग को श्रम की प्रक्रिया से अलग रखा । अतिरिक्त श्रम के उदय और विकास से यह संभव हुआ ।

समुदाय या कुलपति की दासता: अपने विकास के क्रम में दास-प्रथा ने कई अवस्थाओं को पार किया । सब से प्रथम अवस्था को सामुदायिक दासता कहते हैं । वह आदिम-सामुदायिक व्यवस्था के ढांचे में प्रकट हुआ, जबकि सामुदायिक संपत्ति का विनाश नहीं हो पाया था और गुलाम भी सामुदायिक संपत्ति थे । कुलपति की दासता और सामुदायिक दासता में नजदीकी सम्बन्ध था । उसका भी आदिम समुदाय के भीतर ही गठन हुआ था और काफी लम्बे अरसे तक आदिम सामुदायिक सम्बन्धों के साथ जीवित रहा । गुलाम अभी भी अल्प संख्या में थे और उत्पादन प्रक्रिया में उनके श्रम की भूमिका गौण रही । गुलामी का चरित्र खुद ढका रहा और अक्सर एक ही कुल या

कवीले के सदस्यों को दी जानेवाली सहायता के रूप में रहा।

मामूली जीविका के वदले में, जो केवल उसे भूखों मरने से वचाने के लिए पर्याप्त था, एक युद्ध-बंदी या एक निर्धन समुदाय का सदस्य एक धनी कुलके व्यक्ति के लिए काम करने के लिए वाध्य किया जाता था। जैसे-जैसे निजी संपत्ति की संस्था का विकास होता गया, संपत्ति के अधिकार में वस्तुओं के साथ वस्तुओं के निर्माण करनेवाले भी शामिल हो गये। दरिद्र कुलके सदस्य या "दत्तक" युद्ध-बंदी ने गुलाम की कानूनी हैसियत हासिल की, यानी अपने मालिक की निजी संपत्ति बन गया।

युद्ध, गुलामों का व्यापार और कुल के सदस्यों में से दिवालिया कर्जदारों को गुलाम बनाने की प्रथा ने गुलामों की लगातार वृद्धि को निश्चित वनाया। थोड़ा-बहुत रद्दोबदल के अपवाद को छोड़कर सभी देशों में दास-स्वामी समाजों के संयुक्त ऐतिहासिक विकास में ये स्रोत समान थे।

वर्ग : दास-स्वामित्व की प्रथा में ही सबसे पहले वर्गों में विभाजन देखा गया, जो, जैसा कि हम जानते हैं, आर्थिक तत्वों से, आर्थिक सम्बन्धों से निर्धारित होता है।

वर्गों का चरित्र उत्पादन के साधनों के साथ उनके सम्बन्ध से निर्धारित होता है। यह मुख्य तत्त्व ही वर्ग विभेद के अन्य गुणों को निर्धारित करता है—जैसे सामाजिक उत्पादन में स्थान, आकार, आय का स्रोत आदि। इसलिए वर्ग लोगों का बड़ा समूह है जो ऐतिहासिक तौर से निर्धारित सामाजिक उत्पादन की व्यवस्था में अपना स्थान, उत्पादन के साधनों से अपने सम्बन्ध (अधिकांश रूप से कानूनों द्वारा निर्धारित और

व्यवस्थित) श्रम के सामाजिक संगठन में अपनी भूमिका एवं फलस्वरूप, सामाजिक संपत्ति में अपने हिस्से के आकार, और उसे हासिल करने के तरीके से एक दूसरे से भिन्न रहता है।

समाज बहुधा दो से अधिक वर्गों से बनता है, जो बुनियादी और गैरबुनियादी वर्गों में बंटा हुआ रहता है। बुनियादी कहे जाने वाले वर्ग वे हैं जो समाज में प्रचलित उत्पादन के तरीके से उत्पन्न हुए हैं। दास-स्वामी समाज में बुनियादी वर्ग गुलामों के मालिक और गुलाम हैं। इनके साथ, स्वतंत्र किसान, कारीगर, और अन्य सामाजिक समूह भी रहते थे जो गैर-बुनियादी वर्ग होते थे। दूसरे वर्गों का अस्तित्व इसलिये पाया जाता है कि समाज में प्रचलित सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में पहले की व्यवस्था का अवशिष्ट या भावी व्यवस्था के तत्व या दोनों एक साथ रहते हैं। फलस्वरूप गैर-बुनियादी वर्ग प्रमुख उत्पादन के तरीके के विकास के साथ या तो लुप्त हो जाते हैं या उसके विपरीत, भविष्य में अपनी भूमिका अदा करने के लिए बने रहते हैं। नये उत्पादन के तरीके के विकसित और पुष्ट होने के साथ भावी व्यवस्था के तत्त्वों का सृजन और विकास होता है तथा प्रमुख व्यवस्था कमजोर होकर क्षय होने लगती है।

राज्य का गठन : गुलामों की संख्या बढ़ने के साथ बुनियादी वर्गों के बीच—दासों और दास—स्वामियों के बीच—विरोध अधिक से अधिक उग्र हुआ। गुलामों का शोषण सिर्फ प्रथम शोषण ही नहीं बल्कि मानवजाति के इतिहास में सबसे बर्बर शोषण भी था।

स्वतंत्र किसानों की हालत भी अच्छी नहीं थी। वे रोज

कमाते थे, तभी खाते थे । और उन्हें हमेशा कर्ज के बदले गुलाम बनाये जाने का खतरा था ।

गुलामों और स्वतंत्र लोगों का शोषण करने के लिए तथा अपनी संपत्ति बढ़ाने और अपनी अतृप्त लालसा की संतुष्टि के उद्देश्य से उन्हें काबू में रखने के लिए दास-स्वामियों को दमन और उत्पीड़न के एक स्थायी साधन की आवश्यकता थी जो धीरे-धीरे राज्य के रूप में परिणत हुआ ।

दास-स्वामी राज्य के प्रमुख कार्यों में से एक (दूसरे शोषक समाज—सामंतवादी और पूँजीवादी समाजों के ही समान,) शोषित वर्ग का दमन करना था । गुलामों को हासिल करने के लिए दास-स्वामी राज्य लगातार युद्ध करते रहे, विजित जनता को लूट कर उन्हें नजराना देनेवाले या गुलाम बनाते रहे । दास-स्वामी राज्य का दूसरा काम अपने क्षेत्र की रक्षा और विस्तार करना था ।

राज्य अपने कार्यों की व्यवस्था एक विशेष सरकारी यंत्र से चलाता था । इसके लिए राज्य ने सबसे पहले कुछ कबायली और कुलीय-संस्थाओं को अपनाया जो पूरे कबीले या कुल के हित की नहीं रह गयी थी और जो कुल या कबीले के प्रधानों के छोटे समूह, जो धीरे-धीरे पैतृक शासक बन गये, के हाथ का खिलौना बन गयी । सशस्त्र स्वतंत्र व्यक्तियों का स्थान जो आदिम समुदाय की बुनियादी सेना थी, दास–स्वामी राज्य की सेना ने लिया जो जनता से दूर थी और उनके विरुद्ध थी । दास-स्वामियों के क्षुद्र निजी स्वार्थों की रक्षा के लिए सेना का आह्वान किया जाता था । राज्य के जन्म के साथ न्यायालयों का भी उदय हुआ, जिसका एक न्यायिक मान था जो दास-

स्वामियों के हितों का प्रतिबिम्ब करता था न कि पूरे समाज का।

धर्म राज्य-व्यवस्था का एक अविभाज्य अंग बन गया : पुरोहित भी राज्य व्यवस्था में मिल गये और राज्य के निरीक्षकों, पहरेदारों, लिपिकों, उपदेशकों, टैक्स वसूल करनेवालों आदि के साथ सत्ता का उपयोग करने लगे।

पहले कुल और कवायली संघ थे जो रक्त सम्बन्ध से बंधे और बने थे। अब राज्य ने इनकी जगह अपनी प्रजा का विभाजन क्षेत्र के आधार पर किया।

एशिया और अफ्रीका का प्रथम दास-स्वामी राज्य : दास-स्वामित्त्व के आधार पर होनेवाले उत्पादन के तरीके की विजय के साथ प्रथम दास-स्वामी राज्य का उदय ईसा के पूर्व चौथी और दूसरी सहस्राब्दी के बीच मिस्र में तिगरिस और यूफ्रैट्स (मेसोपोटोमिया)—सुमेर अक्कद, बैबिलोन और भारत तथा चीन में होने लगा। द्वितीय सहस्राब्दी के पूर्वार्द्ध में असीरिया में एक राज्य की स्थापना हुई। उसी समय एशिया माइनर के केन्द्रीय पठार में शक्तिशाली हिट्टाइट राज्य का उदय हुआ। ई० पू० १५ वीं शताब्दी में वर्त्तमान यमन के क्षेत्र में प्राचीन अरब मिनार्दन राज्य की स्थापना हुई। ईसा पूर्व १२ वीं शताब्दी के इर्दगिर्द मिस्र के दक्षिण कुश राज्य का उदय हुआ। ईसा के पूर्व प्रथम सहस्राब्दी में ट्रान्सकाकेशिया में उरारटू राज्य का निर्माण हुआ और ई० पू० ७वीं–६ठी शताब्दी में ख्वारिज्म, बैक्ट्रीया, सोगडियाना और बाद में मध्य एशिया में कुशान राज्य की स्थापना हुई। ई० पू० ८ वीं शताब्दी में पश्चिम ईरान में मेडियन राज्य का उदय हुआ।

ई० पू० ६ठी शताब्दी में फारस द्वारा इसे जब्त कर लिया गया। यूनान में दास प्रथा का विकास ई० पू० ८वीं० और ६ठी शताब्दी के बीच में हुआ। ई० पू० ६ठी शताब्दी में रोम में यह प्रकट हुआ। अमरीका में (मध्य और दक्षिण) दास-स्वामी राज्य का उदय स्पेन उपनिवेश बसाने वालों के हमले के एक या दो शताब्दी पहले हुआ, यद्यपि मया नगर-राज्य बहुत पहले ही स्थापित हुए थे।

कबायली (सामुदायिक) गठबन्धन : सबसे पुराना और अधिक आदिम राज्य का रूपीकरण कबायली या सामुदायिक गठबन्धन से हुआ था। प्राय: सभी दास-स्वामी राज्य जिनकी आज जानकारी है, राज्य के विकास की इस मंजिल से गुजरे हैं।

आम तौर से सबसे बड़ा और अधिक शक्तिशाली कबीला या समुदाय गठबन्धन का केन्द्र बनता था। राजा का पद ग्रहण करना उस कुल का विशेषाधिकार समझा जाता था जिसका प्रधान इस कबीला या समुदाय का होता था। तब राजा की सत्ता ने पैतृक रूप धारण कर लिया। शासक कुल से ही अधिक प्रमुख मंदिरों के बड़े पुरोहितों की नियुक्ति होती थी। कबायली या सामुदायिक गठबन्धन या तो प्रमुखों के बीच समझौते से स्थापित होता था या कमजोर कबीले या समुदाय को दबाकर। लगातार युद्ध करके राज्यों ने अपने क्षेत्र का विस्तार किया।

दास-स्वामी स्वेच्छाचारिता: कबीले और समुदायों का गठबन्धन अत्यधिक आदिम राज्य का स्वरूप था। प्रमुख के अधिकारों का विकास और राज्य के ढांचे के सुदृढ़ होने के साथ ये गठबन्धन दास-स्वामी स्वेच्छाचारी राज्य में बदल गये, जो

दास स्वामित्व युग के इतिहास में खास ढंग के राज्य का रूपीकरण था और एशिया, अफ्रीका और अमरीका में व्यापक तौर से प्रचलित था।

प्राचीन स्वेच्छाचारी राज्य के मुख्य गुणों को बहुत से ऐतिहासिक दस्तावेजों के जरिये आज तक सुरक्षित रखा गया है। दास-स्वामी समाज के सामाजिक जीवन से सम्बन्धित दिलचस्प बातें हम्मुराबी संहिता, जो बैबिलोन के एक महान राजा द्वारा निर्मित कानून था, में निहित है।

राजा हम्मुराबी के जमाने में बैबिलोन में एक खास प्रकार की दास-स्वामी स्वेच्छाचारिता थी जहां एकदम केन्द्रित ढंग की सरकार थी। प्रभुसत्ता (विधायक, प्रशासनिक, कानूनी तथा धार्मिक) राजा के हाथ में केन्द्रित थी। प्राचीन राज्यों के प्रमुख सिद्धान्त की एक सारभूत विशेषता थी—राजा की सत्ता और व्यक्तित्व की चरम उच्चता जो प्राय: पूजा और मूर्तीकरण का लक्ष्य बन जाती थी। राजा की सत्ता की सुरक्षा एक पेचीदे नौकरशाही ढांचे से होता था। केन्द्रीय और स्थानीय शासन भिन्न भिन्न पदाधिकारियों और उप-पदाधिकारियों के बीच बंटा हुआ था।

दास-स्वामी समाज का उत्पादन सम्बन्ध : राजा हम्मुराबी के कानूनों में बैबिलोन के राज्यों में ही नहीं बल्कि आम तौर से दास-स्वामी समाजों में प्रचलित उत्पादन सम्बन्धों के स्वरूप के विषय में काफी सूचना प्राप्त होती है।

बैबिलोन के शासक वर्ग में मध्यम और छोटे दास-स्वामी होते थे और हम्मुराबी संहिता में इनके स्वार्थों का समर्थन किया गया है। इन कानूनों से दास-स्वामी राज्य के चरित्र

और उसकी विधायक व्यवस्था का स्पष्ट चित्र मिलता है।

उत्पादन के साधन और स्वयं उत्पादकों (गुलामों) पर दास-स्वामियों का मालिकाना हक ही दास-प्रथा में उत्पादन-सम्बन्ध का आधार था । यद्यपि दास-स्वामी समाज में दास-स्वामियों की संपत्ति की प्रधान भूमिका है तथापि स्वतंत्र किसानों और कारीगरों की तुच्छ संपत्ति भी उसमें शामिल है। वैबिलोन के वारे में भी यही वात सही थी, यद्यपि स्वतंत्र व्यक्ति अपनी आजादी खोने लगे थे और धीरे धीरे गुलामों की स्थिति में पहुँच रहे थे। अपनी नगण्य आजीविका को बचाने के लिए फटेहाल किसान और कारीगर अक्सर धनी दास-स्वामियों के कर्जदार बन जाते थे। एक स्वतंत्र व्यक्ति जो कर्ज अदायगी नहीं कर सकता था अपनी सारी संपत्ति खो देता था, और बंधुआ बन जाता था।

दास-स्वामी राज्य में समुदाय : वैबिलोन के समाज में गुलाम और स्वतंत्र लोगों का एक साथ पाया जाना कैसे संभव हुआ? ये स्वतंत्र लोग मुख्यतः स्वतंत्र किसान थे जो आदिम समुदाय के अवशिष्ट थे।

राज्यों के रूपीकरण के वहुत पहले वाढ़ग्रस्त नदियों से सिंचित उपजाऊ जमीन के वड़े क्षेत्रों में खेती का उदय हुआ जो पेंचीदे और सुसंगठित सिंचाई व्यवस्था पर आधारित थी। गुलामी श्रम एवं दास-स्वामियों के वीच सिंचित जमीनों और सिंचाई की व्यवस्था के बंटवारे के आधार पर वड़ी भू-संपत्ति की स्थापना से गुलामों के वीच अपने श्रम के फल के प्रति आस्था नहीं रहती और खेती तथा सिंचाई दोनों का ह्रास हो जाता।
फलस्वरूप, राज्य ने समुदाय को कायम रखना लाभदायक

समझा। लेकिन वह जमाना बीत चुका था, जब समुदाय के सदस्य शोषण नहीं जानते थे। वदली हुई ऐतिहासिक परि-स्थिति में समुदाय दास-स्वामी राज्य द्वारा शोषण का शिकार वना। किसानों को अपनी फसल का वड़ा हिस्सा राजा, पुरोहित और सेना को दे देना पड़ता था। ओवरसियर सिंचाई की व्यवस्था पर लगातार नजर रखते थे और टैक्सों एवं शुल्कों की नियमित अदायगी की देखभाल करते थे।

दूसरे प्राचीन निरंकुश राज्य में भी—मिस्र, चीन, भारत, ईरान, इनकस का राजतंत्र आदि—कमोवेस यही स्थिति थी।

यद्यपि दास-स्वामी राज्य की दिलचस्पी खेतिहर समुदाय को कायम रखने में थी पर उसने धीरे धीरे उसका क्षय किया। राजा खुद जमीन के बड़े हिस्से का मालिक वन गया जिसे किसान समुदाय को नष्ट करके वह वरावर बढ़ाता गया। अपनी सत्ता के सामाजिक आधार को मजबूत वनाने के लिए राजा ने जमीन का वड़ा इलाका, अपनी निजी रियासत से या सामुदायिक जमीन से, अपने दरवार के दास-स्वामियों तथा असैनिक, सैनिक और धार्मिक अधिकारियों को दिया। समु-दाय के ह्रास में उसके सदस्यों के एक हिस्से का धनी होने और दूसरे का गरीव हो जाने की भी उल्लेखनीय भूमिका रही।

एशिया और अफ्रीका के प्राचीन राज्यों में उत्पादक शक्तियों का विकास : एशिया और अफ्रीका के प्राचीन राज्यों में उत्पादक शक्तियों का और विकास हुआ। उदाहरण के लिए मिस्र को लें जहां पत्थर से बने खेती के औजारों को लोहे के बने औजारों ने धीरे धीरे मिटा दिया। मध्यकालीन राजवंशों के जमाने में मिस्र में

कारीगरी और [illegible] का उभाड़ देखा गया। आम तौर से कारीगरी स्वतंत्र व्यक्तियों का धन्धा था लेकिन बाद के युग में (नये राजवंश) स्वतंत्र व्यक्तियों को बढ़ते हुए गुलामों के साथ-साथ काम करते हुए पाया गया। कारीगरी की विशेषज्ञता बड़े पैमाने पर विकसित हुई; मिस्र की एक प्राचीन समाधि की दीवार पर भिन्न-भिन्न प्रकार के श्रमका चित्रण किया गया है जहां जुलाहा, सूत काटनेवाला, चमड़ा पकाने वाला (चमार), बढ़ई, लोहार, धातु गलाने वालों और ढालने-वालों को काम करते हुए दिखाया गया है। सपाट करघा, जिसमें दो या तीन मजदूरों के काम की आवश्यकता पड़ती थी, का स्थान खड़े करघों ने लिया, जिसे एक व्यक्ति चलाता था। अन्य नयी पद्धतियां भी प्रकट हुईं : भट्टी में हवा करने के लिए पैर से चलाने वाले भाथी, सुधरा हुआ हल का मूठ (वेट), ताम्बे से खोखली मूर्त्ति ढालना। कांच का उत्पादन बड़े पैमाने पर विकसित हुआ।

अन्य एशियाई और अफ्रीकी देशों में भी उसी तरह कारीगरी के विकास का चित्र मिलेगा। हम्मुराबी की संहिता में उस तरह की विशेषज्ञता का बहुत-सा वर्णन मिलेगा। मिलिन्द पंझा ग्रंथ में बैक्ट्रिया के कारीगरों के विभिन्न धंधों का वर्णन है— बर्त्तन बनाना, चमड़ा पकाना, कंघी बनाना, बुनना, टोकरी बनाना, कमान बनाना, धातुओं का काम आदि।

आदिम औजारों और उपकरणों के साथ पेचीदे मशीन भी प्रकट होने लगे। मशीनों के आविष्कार से मिस्र के महान पिरामिडों के बनाने में भारी पत्थरों को उठाना संभव हुआ।

फिर भी सबसे कठिन और खतरनाक काम गुलामों को सौंपा

जाता था।

सिंचाई व्यवस्था, जो सबसे पहले आदिम-सामुदायिक व्यवस्था में प्रकट हुई थी, नये उपकरणों के सुधार एवं कारीगरी में ज्ञान-वृद्धि से और सुधरी। उदाहरण के लिए, लोहे के औजारों के इस्तेमाल से उराटू राज्य में पथरीली जमीन पर नहर का बनाना संभव हुआ।

नील नदी पर आसवान सिंचाई व्यवस्था को भी प्राचीन-काल की एक महान सफलता मान सकते हैं, लेकिन उसकी तुलना नयी आसवान सिंचाई योजना से नहीं की जा सकती जो मिस्त्री जनता सोवियत यूनियन के भ्रातृत्वपूर्ण सहायता से बना रही है। आजकल इस योजना का नाम दुनिया को बताता है, ५ किलोमीटर लम्बी बांध के बारे में, २, १००, ००० कीलोवाट शक्ति के एक विद्युत घर के बारे में और २० लाख सिंचित जमीन के बारे में।

बढ़ते हुए जल-व्यापार के फलस्वरूप सुधरे हुए जहाजों का निर्माण हुआ। सेना सम्बन्धी तकनीक का भी विकास हुआ।

मुद्रा-पण्य सम्बन्ध का विकासः आदिम विनिमय के जमाने में भी एक सर्वमान्य तुल्य मूल्य (समतुल्य), अर्थात् एक पण्य का इस्तेमाल होता था जो विनिमय के माध्यम का काम करता था। प्रारंभिक अवस्था में कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण वस्तुओं का इस तरह इस्तेमाल होता था, जैसे जानवर, रोयें, चमड़े, हाथीदांत आदि। दास-स्वामी समाजों में सर्वमान्य समतुल्य की भूमिका धीरे-धीरे धातुओं को दी गयी, सबसे पहले लोहे और तांम्बे को तथा बाद में

सोना और खासकर चाँदी को । तब मुद्रा आम द्रव्य के रूप में प्रकट हुई, एक विशेष पण्य के रूप में जिसका अन्य सभी पण्यों के लिए विनिमय किया जा सके। इस तरह वह पण्यों का पण्य बन गयी।

जब व्यापार नियमित बन गया, एक वर्ग का निर्माण हुआ जो उत्पादन में भाग नहीं लेता था बल्कि केवल वस्तुओं का विनिमय करता था। वह व्यापारी वर्ग था जिसके लिए श्रमिकों द्वारा पैदा की गयी वस्तुओं का एक हिस्सा हड़प लेने के लिए व्यापार एक साधन था।

यह सामाजिक श्रम का तीसरा विभाजन था। प्राकृतिक अर्थतंत्र अभी तक उत्पादन का प्रमुख स्वरूप था। उसकी जगह पर पण्य उत्पादन आया, अर्थात् विनिमय के लिए वस्तुओं का उत्पादन शुरू हुआ।

नगरों का उदय : हस्तकला उत्पादन स्वभावत: पण्यों का उत्पादन होता है, अर्थात् एक कारीगर उत्पादन का बड़ा हिस्सा अपने उपभोग के लिए नहीं बल्कि विनिमय या बिक्री के लिए पैदा करता है। इसलिए कारीगर और व्यापारी के बीच, जो उत्पादक और उपभोक्ता के बीच मध्यवर्त्ती के रूप में आता है, नजदीकी सम्बन्ध की आवश्यकता पड़ती है। इसके फलस्वरूप कसबों का उदय हुआ, जिसमें व्यापारी और कारीगर रहा करते हैं—यही शहर है जो कारीगरी और व्यापार के केन्द्र के रूप में विकसित हुआ।

स्थाई रूप से कबीलों के रहने की जगहों, धार्मिक केन्द्रों, किलेबन्दियों तथा जलस्रोतों के पास या व्यापार मार्ग की चौमुहानी पर अक्सर शहरों का उदय हुआ। उदाहरण के लिए

ईसा पूर्व द्वितीय सहस्राब्दी के अन्त में मक्का नगर स्वास्थ्यप्रद झरने के पास बसा जहाँ लोग **पवित्र काले पत्थर** की पूजा करने के लिए इकट्ठा होते थे।

व्यावसायिक सम्बन्धों का विकास: उस प्राचीन समय में जब मनुष्य को भाप और बिजली का कोई ज्ञान नहीं था, जब पशु-शक्ति का उपयोग भी छोटे पैमाने पर होता था, यातायात के सबसे सस्ते साधन बेड़ा, नाव और जहाज थे। व्यापारिक सम्बन्ध मुख्यत: समुद्री किनारों और नदियों के किनारे स्थित देशों और शहरों के बीच ही स्थापित हुआ। जैसे-जैसे इन सम्बन्धों का विकास होता गया, व्यापार अधिक से अधिक महत्त्वपूर्ण बन गया, और बहुत से देशों एवं शहरों में वह धन का मुख्य स्रोत बन गया। प्राचीन फोएनिसिया-वासी, जिनका नगर-राज्य ईसा पूर्व तीसरी सहस्राब्दी में भूमध्य सागर के पश्चिमी तट पर प्रकट हुआ, अपनी असाधारण व्यापारिक कुशलता एवं व्यापारियों की चतुराई एवं लोलुपता के लिए प्रसिद्ध थे। उनके जहाज भूमध्य सागर में दूर-दूर तक जाते थे, उनके पास विभिन्न प्रकार की वस्तुओं की भरमार थी जिनमें व्यापार के एक मुख्य सौदे के रूप में गुलाम होते थे।

उसी जमाने में व्यापार के स्थलमार्ग की भी स्थापना हुई। वे एशिया और अफ्रीका के दूर-दूर के देशों से सम्बन्धित थे और काफला कभी-कभी अपने लक्ष्य पर पहुँचने के लिए हजारों कीलोमीटर का सफर करता था।

व्यापार, पण्य और मुद्रा सम्बन्धों के विकास के फल-स्वरूप एक छोटे अल्पसंख्यकों के हाथ में धन का केन्द्रीकरण हुआ और बहुसंख्यक लोग कंगाल होने लगे। धनी वर्गने

किसानों और कारीगरों की गरीबी से फायदा उठाया और स्वेच्छा से ऊँचे सूद पर उन्हें पैसा और जीवनोपयोगी वस्तु, खाद्य-पदार्थ, औजार आदि कर्ज के रूप में दिये । किसान या कारीगर कभी-कभी बड़े परिवार, प्राकृतिक कोप, बीमारी या विदेशी हमले से पीड़ित होते थे और अपना कर्ज वापस करने में असमर्थ होते थे । कर्जदार तब महाजन के बंधुआ बन जाते थे । अंत में या तो कर्जदार खुद या उसकी संतान गुलाम बन जाते थे, अर्थात् एक सामाजिक तबके (स्वतंत्र व्यक्ति) से दूसरे (गुलाम) में बदल जाते थे । फलस्वरूप मुद्रा और पण्यों के सम्बन्धों के विकास से संपत्ति और सामाजिक विभेद की वृद्धि हुई ।

वर्ग-संघर्ष और उसका महत्त्व : वर्ग संघर्ष दास-स्वामी समाज के संपूर्ण इतिहास में व्याप्त है और मुख्यत: वह दास–स्वामी और दासों के बीच का संघर्ष रहा है । भिन्न-भिन्न वर्गों की आर्थिक स्थिति के अन्तर्विरोध से और सामाजिक उत्पादन की व्यवस्था में प्रत्येक वर्ग की हैसियत एवं परस्पर विरोधी स्वार्थों के चलते वर्ग-संघर्ष अनिवार्य हो जाता है । गुलाम, जो संपत्ति से वंचित और इतिहास में सबसे बर्बर शोषण के शिकार थे, स्वभावत: उत्पादन के ऐसे तरीकों एवं राज्य-व्यवस्था को भंग करने के इच्छुक थे, जिसने उन्हें इस भयानक स्थिति में पहुँचा दिया था और जिसका उनके शोषक—दास-स्वामी बहुत सावधानी से संरक्षण कर रहे थे । इसलिए गुलाम एक क्रांतिकारी वर्ग था, यद्यपि उसका क्रांतिकारी चरित्र बहुत सीमित था ।

एशिया और अफ्रीका के प्राचीन राज्यों में गुलामों के वर्ग-संघर्ष का स्पष्ट चित्र उनके सशस्त्र विद्रोहों से मिलता है। मिस्र के मध्यकालीन राज्यों के अंतिम युग में नीचे के तबके के लोगों का एक प्रभावशाली विद्रोह हुआ था, जिसमें गुलामों के साथ फटेहाल किसान और कारीगर जनता ने हिस्सा लिया था।

कई युगों तक प्राचीन चीन गुलामों के लगातार विद्रोह का केन्द्र था। शासकवर्ग ने निर्दयता से इन विद्रोहों का दमन किया। सभी विद्रोहों का अनिवार्य परिणाम हार थी, क्योंकि उसमें भाग लेनेवालों में आवश्यक संगठन और अनुशासन का अभाव था, उनके कदम अक्सर असंगठित होते थे तथा शासक-वर्ग की सशस्त्र सेना के सामने वे टिक नहीं सकते थे। उस जमाने में मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण का अंत करने की वास्तविक परिस्थिति तैयार नहीं थी।

चाहे जो हो, स्वतंत्र किसानों, कारीगरों और गुलामों के विद्रोहों के दमन से उन्हें उनके अत्यधिक प्रगतिशील महत्त्व से वंचित नहीं किया जा सका, क्योंकि उसने उन उत्पादन-सम्बन्धों को कमजोर किया जो पुराने हो रहे थे और अधिक प्रगतिशील सम्बन्धों की स्थापना की।

ये विद्रोह जनता द्वारा अपने मुक्ति-संघर्षों के सिलसिले में उठाये गये पहले कदम थे। उन्होंने इस ऐतिहासिक संघर्ष की परम्परा स्थापित की और इसे शक्तिशाली बनाया। इन आन्दो-लनों से जो अस्थाई सफलता मिली उसने भी अकसर श्रमजीवी जनता की स्थिति में कमोबेस सुधार किया और इस तरह उत्पादक शक्तियों के विकास को सहायता पहुँचाई।

प्राचीन दास-स्वामी राज्यों का आदर्श और संस्कृति :

आदिम सामुदायिक समाज के युग में, गुलामी प्रथा के उदय के पहले, कर्त्तव्य का बोध, सामूहिकता और शारीरिक श्रम का सम्मान मनुष्य के आदर्श के आंतरिक गुण थे। ये आदर्श, उस जमाने के सभी प्रचलन के समान, धर्म के साथ बँधे हुए थे। पूजित होने वाले अनेक देवताओं का स्थान समुदाय के सदस्यों के समान बराबरी का था और देवता अपनी ओर से अपने-अपने समुदाय (कबीला या कुल) के साथ बराबरी का व्यवहार करते थे।

समाज के परस्परविरोधी वर्गों में बँटने के फलस्वरूप आम आदर्श और संस्कृति का विभाजन शोषक और शोषितों की तरह हो गया। इन परस्परविरोधी विचारों का मनुष्य की चेतना में धीरे-धीरे स्थाई बन जाना प्राचीन दास-राज्य में मनुष्य के सिद्धान्त की सारभूत विशेषता थी। यह अन्तर्विरोध कला, नीतिशास्त्र और दर्शन में प्रकट हुआ, और धर्म में अपने ऊपरी ढाँचे के सर्वव्यापी चरित्र के कारण खुल कर प्रदर्शित हुआ।

आम जनता से शासकवर्ग के अलगाव तथा अपनी स्थिति और मजबूत बनाने के साथ असंख्य देवताओं और आत्माओं की जगह पर अपेक्षाकृत सीमित ईश्वरों का उदय हुआ, जिनका चुनाव अधिकारी देवताओं के रूप में पुरोहितों द्वारा होता था। दास-स्वामी निरंकुशता की स्थापना के साथ एकेश्वरवाद की भी स्थापना हुई। सरकारी धर्म का व्यापक समर्थन शासक-वर्ग करता था। इन धर्मों की विविधता के बावजूद उनकी वर्गभूमिका एक सी थी—श्रमजीवी जनता को गुलाम रखना,

उन्हें भगवान के कोप का भय दिखाना कि इस लोक में या

परलोक में सजा मिलेगी। किसी-न-किसी रूप में सरकारी धर्मों ने शोषकों और शासकों की हुकूमत को देवत्व दिया।

बहुत से मामलों में सरकारी धर्म जनता की समझ से बाहर और विजातीय थे। अक्सर वे विदेशी मूल के होते थे और गुलामों, स्वतन्त्र लोगों एवं कारीगरों के धार्मिक विचार पुरोहितों द्वारा लादे गये सरकारी धार्मिक विचारों से भिन्न होते थे। यह भिन्नता अक्सर साफ-साफ दिखाई पड़ती थी। उदाहरण के लिए, प्राचीन अरमेनिया में यद्यपि राजाओं और कुलीनों ने हिल्लेनिस्टिक (यूनानी) धर्म को कबूल किया था तो भी जनता को अपने प्राचीन विश्वास, खास कर मरने और पुनर्जीवित होनेवाले प्रकृति के भगवान—अरा स्प्लेन्डिड को छोड़ने के लिए कोई प्रेरित नहीं कर सका।

जनता और शोषक वर्गों के बीच अन्तर्विरोध का क्षेत्र केवल धर्म ही नहीं था।

शारीरिक श्रम के प्रति अपने रुख में शासक वर्ग ने सबसे पहले अनास्था दिखाना शुरू किया, फिर तिरस्कार और घृणा करके मानते थे कि "कुलीन" लोगों के लिए वह निकृष्ट है। लेकिन प्राचीन दास-स्वामी-राज्य की बहुमत जनता में श्रम की प्रतिष्ठा कायम रही जब कि व्यक्तिगत श्रम की प्रक्रिया विभिन्न धार्मिक विचारों से जुटी हुई थी।

निजी संपत्ति और व्यक्तियों द्वारा सम्पत्ति के संचय से स्वार्थ, शासक वर्ग का, एक मुख्य गुण बन गया। उनका व्यक्तिगत स्वार्थ जनता और देश के स्वार्थ से ऊपर रहने लगा। जनता और खास कर जमीन जोतने वाले, जो बहुत से समान

श्रम की प्रक्रिया से बँधे हुए थे, समुदाय के स्वार्थ को अपने

सुख-दुःख से ऊपर रख आम भलाई के लिए अपने को त्याग करने के लिए तैयार रहते थे।

ज्ञान का संचय : भौतिकवाद और द्वन्द्ववाद का प्रारम्भ :* हमने पहले ही बताया है कि प्राचीन दास-स्वामी-राज्य में धर्म मनुष्य की चेतना का सर्वव्यापी स्वरूप था। प्रकृति और समाज के बारे में अध्यात्मवाद के विश्वास की प्रधानता का यही कारण था। फलस्वरूप सभी प्राकृतिक दृश्यों, सभी मानव-कर्म या सामाजिक घटनायें जिनकी तुरन्त कोई वैज्ञानिक व्याख्या नहीं की जा सकती थी, अलौकिक शक्ति की लीला के रूप में बतायी जाती थीं; वस्तुगत ज्ञान का संचय ही उत्पादक शक्तियों का विकास एवं अधिक पेचीदे श्रम की प्रक्रियाओं का विकास कर सकता था। अतिरिक्त उत्पादन के प्रकट होने से लोगों को बौद्धिक कार्यों के लिए, प्राकृतिक नियमों को धीरे-धीरे जानने के लिए अधिक समय मिला। मिश्रवाले नीलनदी की वार्षिक बाढ़ को धीरे-धीरे एक नियमित घटना मानने लगे और यद्यपि वे अबभी मगरमच्छ सम्प्रदाय कायम रखे हुए थे

---

* भौतिकवाद एक दार्शनिक प्रणाली है जो वस्तु की मान्यता पर आधारित है, सभी वर्त्तमान वास्तविकता के भौतिक आधारों को प्राथमिक मानता है जब कि चेतना, आत्मा और विचार को द्वितीय, वस्तु से उत्पन्न, मानता है। भौतिकवादी दर्शन विज्ञान के निष्कर्षों पर आधारित है। द्वन्द्ववाद विकास और गति का अध्ययन करने-वाला एक विज्ञान है। मार्क्सवादी द्वन्द्ववाद प्राकृतिक और सामाजिक विकास तथा मानव विचारों के विकास के आम नियमों का सिद्धान्त है।

तो भी उससे बाढ़ आने का समय, बाढ़ से आनेवाली कीचड़

की मात्रा या बाढ़ में सींचे जानेवाले इलाके का अनुमान करने में बाधा नहीं हुई।

वस्तुगत ज्ञान के प्रथम तत्त्वों से प्रथम दार्शनिक विचारों एवं सिद्धान्तों का उदय हुआ जिनने वस्तु को सभी प्राणियों का आधार माना जो कि उन पुरानी अध्यात्मवादी धारणाओं के विपरीत था जो आत्मा और अलौकिक शक्ति को प्रधानता देती थी। उदाहरणार्थ, प्राचीन मिस्री पुराणों के अनुसार, वायु सभी वास्तविकताओं का आधार है, विश्व स्वयं भौतिक आधार—पानी से उत्पन्न हुआ। हमारे युग के बहुत पहले भारतीय दार्शनिकों ने सरकारी ब्राह्मण-धर्म का विरोध किया और बताया कि सभी प्राकृतिक दृश्य चार पदार्थ : जल, मिट्टी, आग और वायु के मिश्रण का परिणाम हैं।

विज्ञान और कला : उत्पादन के विकास के साथ मनुष्य के व्यावहारिक कार्य समृद्ध और बहुमुखी हुए तथा विज्ञान एवं ज्ञान की संभाव्यता अधिक व्यापक हुई। काटे या बोये गये अनाज की मात्रा का अनुमान करना, खेत का क्षेत्र या नहर की लम्बाई नापना, सूखा या बाढ़ की भविष्यवाणी करना, पीतल के लचीलेपन और रचना को तय करना आदि बातें जरूरी हो गयीं, इसलिए अंकगणित, रेखागणित, ज्योतिष, रसायनशास्त्र और भौतिकविज्ञान के अंकुर का उदय हुआ। प्राचीन चित्र, जो एक लिखित पदार्थ का लगभग अर्थ बताता था, उसका स्थान चित्रलिपि और वर्णमाला ने लिया जिससे भाषा की सभी इकाइयों का लिखना संभव हुआ। इसका यही अर्थ है कि शासक-वर्ग के हितों की रक्षा करनेवाले कानूनों का अब

ठोस रूपीकरण हो सकता था और वेची या खरीदी गयी वस्तुओं

का ठोस अनुमान, एक व्यक्ति अथवा मंदिर के पास की संपत्ति का निश्चित हिसाव किया जा सकता था; एक शत्रु-राज्य की शक्ति के वारे में सूचना मिल सकती थी। इसलिए दास-स्वामी-राज्य की आवश्यकताओं से रेखा-लिपि का विकास हुआ।

एशिया और अफ्रीका के प्राचीन राज्यों में लिखित भाषा के प्रादुर्भाव से साहित्य के विकास को प्रोत्साहन मिला। मिस्री लेखकों ने विभिन्न प्रकार की साहित्यिक रचनाओं की विशाल विरासत छोड़ दी है जैसे जीवनी, गीत, कहावतें, यात्रावृत्त आदि, जिनमें प्राचीन संस्कृति के सैद्धान्तिक प्रकाशनों के समान ही वर्ग-विद्वेष समाया हुआ था। एक लेख में एक गुलाम लड़की की कहानी बतायी गयी है जिसको अपनी मालकिन की आज्ञा का उल्लंघन करने से मगरमछने खा लिया था। यहां पाठकों के सामने शासकवर्ग के सिद्धान्त का पर्दाफाश होता है। ऐसे लेख भी हमें मिलते हैं जिनमें पददलित लोगों के असन्तोष का चित्रण है। निम्नलिखित प्राचीन मिस्री गीत के एक पद्य में यह वात है :

प्रतिदिन क्या हम
जौ और गेंहूँ लादेंगे ?
अन्न भण्डार भरपूर है
अनाजों से फट रहा है
लेकिन हम मजबूर हैं लादने को……

उत्पादन, विज्ञान, साहित्य और कला के क्षेत्र में प्राचीन एशियाई और अफ्रीकी जनता की प्राप्त सफलताओं ने संस्कृति के

विकास में पर्याप्त योग दिया, विशेष तौर से भूमध्य-सागर के क्षेत्र के देशों में और खास कर यूनान तथा रोम के दासस्वामी-समाजों में उत्पादक शक्तियों के शीघ्र विकास को प्रोत्साहित किया।

अफ्रीका के दास-स्वामी-राज्य : अफ्रीका के विशाल भूभाग में अनेक दास-स्वामी राज्यों का उदय हुआ : उनमें मिस्र, कुश, करथगे और नुमिदिया थे। विशेष दिलचस्पी का विषय मिस्र और कुश थे जिनका निर्माण करथगे जैसे राज्यों से भिन्न, गैर-अफ्रीकी संस्कृतियों के विशेष प्रभाव से अछूता, था।

प्राचीन मिस्र : ईसा के पूर्व चतुर्थ सहस्राब्दी के अन्त में प्राचीन मिस्र में दास-स्वामी निरंकुश शासन के उदय के साथ प्राचीन इतिहास के एक महत्त्वपूर्ण युग का प्रारंभ हुआ। इस राज्य का रूपीकरण तथाकथित आदिम युग में व्याप्त था जबकि दास-स्वामी, अपनी शक्तिशाली सेना से सिनाई प्रायद्वीप और उत्तरी नुबिया पर कब्जा करने के लिए निरन्तर युद्ध करते रहे।

केन्द्रित सरकार के गठन से सिंचाई व्यवस्था का सुधार और विकास संभव हुआ, जो कृषि का आधार था। मिस्री जनता के लिए मछली मारना और शिकार खेलना बहुत अधिक महत्त्व के कार्य थे, यद्यपि पशुपालन का भी विकास हुआ था, खास कर नीलनदी के दियारों में जो चारागाहों से भरपूर थे।

मुख्य आर्थिक और सामाजिक इकाई ग्राम-समुदाय था जिसका उस जमाने में दास-स्वामियों द्वारा निर्दयता से शोषण होता था। बाद में बड़े पैमाने पर मंदिरों की खेती बन गयी। जैसे तिगरी और यूफराटेस घाटी राज्यों में हुआ, दास-

स्वामियों, पुरोहितों और महाजनों द्वारा सामुदायिक भूमि के

हथियाँ लेने तथा वर्ग-विभेद की वृद्धि से समुदायों का धीरे-धीरे ह्रास हुआ। किसान इतने गरीब हुए कि उनका गुलामों से थोड़ा सा ही फरक रह गया।

राजा और मंदिर के खेतों तथा धनी भूस्वामियों और अफसरों के बागानों में गुलाम मुख्य श्रमिक-शक्ति बने। गुलामों की संख्या तेजी से बढ़ रही थी। शासक-वर्ग के हित में मिस्री शासकों ने असंख्य लड़ाइयाँ कर, नये गुलामों, जानवरों और अन्य दौलत पर कब्जा किया।

मिस्र में राजसत्ता का मुख्य उद्देश्य दास-स्वामियों के शासन को सुदृढ़ बनाना था। इस उद्देश्य से सरकार कड़ाई से केन्द्रित रहती थी, शाही खजाने में अपार धन बरसता था। उसका स्रोत केवल लड़ाई की लूट नहीं थी, बल्कि भारी कर भी था जो असंख्य शाही अफसरों द्वारा जनता पर लादा जाता था। शासकवर्ग के हाथ में कानून एक और शस्त्र था। प्रान्तों में शाही न्यायाधीश का पद अक्सर शाही प्रतिनिधि ही बहन करता था। मुख्य न्यायाधीश फराओं (राजाओं) के मुख्य सलाहकार भी होते थे जिसकी पूजा दैवी शक्ति रखनेवाले के रूप में की जाती थी। फराओं (राजाओं) और संपूर्ण शासक वर्ग की महिमा दिखाने के लिए विशाल पिरामिडों का निर्माण करने में हजारों गुलामों और स्वतन्त्र लोगों को काम करने के लिए बाध्य किया जाता था।

बाद के मध्यकालीन और नवीन राजकुलों के जमाने में राज्य का सरकारी स्वरूप व्यवहार में अपरिवर्त्तित रहा।

कुश राज्य : कुश राज्य का स्वर्ण युग ईसा पूर्व आठवीं

शताब्दी के आसपास शुरू हुआ, यद्यपि राज्य की स्थापना ईसा

पूर्व १३वीं या १२वीं शताब्दी पहले हुई थी। एक लम्बे समय तक कुशवासी प्राचीन मिस्र के अधीन थे। लेकिन ईसा पूर्व आठवीं शताब्दी तक कुश एक स्वतन्त्र राज्य बन गया था, और उसने उल्टे मिस्र को जीतना शुरू किया था। ईसा पू० ७२५ के करीब कुशी राजा पियांखी ने उसे अपने अधीन कर लिया। कुश राज्य ने भूमध्य सागर से वर्तमान इथोपिया और उगाण्डा की सीमा तक के विशाल क्षेत्र पर कब्जा कर लिया था। कुछ समय तक उसने विश्व-शक्ति की हैसियत बना ली थी। कुशवाले, असीरियावालों, मिस्रवालों और अन्त में रोम-वालों के खिलाफ लगातार युद्ध में लगे हुए थे: उनकी सेना अक्सर शानदार जीत हासिल करती थी। ऐतिहासिक दस्ता-वेजों से रोमवालों पर विजय पाना प्रमाणित होता है। लेकिन शत्रु देशों के साथ लगातार संघर्ष ने कुशी राज्य की जड़ कमजोर की और ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी के लगभग उसका पतन हुआ।

मिस्र के ही समान कुश की सभ्यता का विकास नील घाटी की उपजाऊ जमीन पर हुआ। प्रतिकूल प्राकृतिक परिस्थिति तथा घुमक्कड़ कबीलों के लगातार हमले से कुशवाले मिस्र, बैबिलोन और अन्य प्राचीन दास-स्वामी-राज्यों की जैसी विशाल सिंचाई व्यवस्था का निर्माण नहीं कर सके। इसलिए शिकार और पशुपालन का बहुत आर्थिक महत्त्व था। पुरातत्त्व की उपलब्धियों में दैनिक उपयोग के स्थानीय बर्त्तन और वस्तुओं के उत्तम नमूने प्राप्त हुए हैं जो लकड़ी, सोना, ताम्बा, चमड़ा और हाथी दांत के बने हैं; ये तुलनात्मक दृष्टि से दस्तकारी

के उन्नत विकास के प्रमाण हैं। कुशानी सभ्यता के बहुत से शानदार उन्नत स्मारक आज तक मौजूद हैं जिनमें मूर्त्तिकला, वास्तुकला और चित्रकला हैं। कुशानों के बीजाक्षारों में लिखने की अपनी प्रथा थी। इस राज्य की संस्कृति पर कुछ मिस्री प्रभाव भी दिखायी पड़ता था।

कुशानों के बीच दास-प्रथा भी व्यापक थी; उसका मुख्य स्रोत, मिस्र के समान, युद्ध तथा कर्ज और व्यापार के लिए गुलाम बनाना था। उनके व्यापारिक सम्बन्ध विस्तृत थे और अफ्रीकी देशों से बाहर के देशों में भी व्याप्त थे।

सोवियत भूमि में दास-स्वामी-राज्य : कुछ प्राचीन दास-स्वामी-राज्य उन इलाकों में भी विकसित हुए जो अब सोवियत भूमि के हिस्से हैं—वे थे, उरार्टू, अरमीनिया, आइबेरिया, कोलमिस, प्राचीन अलबानिया, ख्वारिजम, सागडियाना, बेक्ट्रिया, कुशान और बोसपोरस का राजतन्त्र। यहाँ उत्पादक शक्तियों का विकास, अतिरिक्त उत्पादन का उदय और विकास तथा वर्गों का रूपीकरण, सबसे पहले, लोहे के गलाने से ज्यादा सम्बन्धित थे। ट्रांसकाकेशिया, केन्द्रीय एशिया और उत्तरी काला सागर के क्षेत्रों से प्राप्त असंख्य पुरातत्त्व सम्बन्धी तथ्यों में यह देखा गया है।

उरार्टू: उरार्टू कबीले के मैत्री से सम्बन्धित सबसे पुराने तथ्य ईसा पूर्व १४ वीं शताब्दी के मिलते हैं। एक दास-स्वामी-राज्य के रूप में लेकवान घाटी में ई० पू० प्रथम सहस्राब्दी में इसका उदय हुआ और बाद में विशाल क्षेत्र उसमें शामिल किया गया। इसकी सेना दक्षिण-पूर्व में टिगरिस और दक्षिण-पश्चिम में भूमध्य सागर के किनारे तक धावा करती थी। उत्तर में उरार्टू

ने बहुत से क्षेत्र जीत लिये जो अब सोवियत ट्रान्सकाकेशिया का हिस्सा है। उरार्टू राज्य द्वारा कब्जा किये गये ऊँचे इलाके बैबिलोन या मिस्र के मैदान की अपेक्षा खेती के लिए कम उपयोगी थे। विभिन्न नदी, घाटियों में ही खेती संभव थी जहाँ तेज पहाड़ी झरने, उस क्षेत्र के स्वभाव के अनुकूल, सिंचाई के लिये पानी की आपूर्त्ति करते थे। फलस्वरूप एक लम्बे अरसे तक पशुपालन को प्राथमिकता दी जाती थी। लोहे के औजारों के इस्तेमाल के बाद ही, जिससे चट्टानी पठारों में सिंचाई व्यवस्था का निर्माण हो सका, राज्य के पहाड़ी इलाकों में खेती का विकास हुआ।

यद्यपि दास सम्बन्धों का काफी विकास हो चुका था तो भी आदिम-सामुदायिक व्यवस्था के बहुत से अंश जीवित थे और दास-प्रथा में हो कई पितृसत्तात्मक गुण रह गये थे। उदाहरण के तौर पर, गुलामों में से कुछ, सामुदायिक सम्पत्ति समझे जाते थे। आबादी का बड़ा हिस्सा स्वतन्त्र किसानों का था, जो साथ ही साथ योद्धा भी होते थे। दास-स्वामी स्वेच्छाचारी राज्यों के विपरीत शाही अर्थतन्त्र कम पैमाने पर चलता था और राजतन्त्र का स्वेच्छाचारी चरित्र नहीं बन पाया।

उरार्टू राजतन्त्र ई० पू० ९वीं शताब्दी के अन्त और ई० पू० ८वीं शताब्दी के तृतीय शतक में उन्नति के शिखर पर पहुँचा। उसी जमाने में वह प्राचीन धातु गलाने वाले बड़े केन्द्रों में से एक बन गया। उरार्टू राजाओं ने नगरों, किलों और सिंचाई व्यवस्थाओं का निर्माण किया। इसमें श्रमिकों का समूह गुलाम और स्वतन्त्र लोग थे। पुरातत्त्व की उपलब्धियों में बहुत से पदार्थ पाये गये हैं—बर्त्तन, शस्त्र, स्मारक मूर्त्तियाँ, जो

उरार्टू जनता की उन्नत संस्कृति के प्रमाण हैं। उन लोगों ने असीरिया वालों से कीलाक्षर लिपि को अपनी भाषा की विशेषताओं के अनुसार अपना लिया।

असीरिया राजतन्त्र के खिलाफ भयानक लड़ाइयाँ, उत्तर से सीथियनों के हमले, देश के भीतर गुलामों के विद्रोह और कवीलों का अनैक्य—इन सबों ने उरार्टू राजतन्त्र के ह्रास (ई० पू० ७वीं शताब्दी) और अन्ततोगत्वा पतन में (ई० पू० ६ठी शताब्दी) महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

उरार्टू राजतन्त्र और उसकी सभ्यता का ट्रान्सकाकेशिया की जनता की समृद्धि पर उल्लेखनीय असर रहा है। इस राज्य का विशाल क्षेत्र एक महान् ऐतिहासिक रंगभूमि बन गया जहाँ विभिन्न कवीले और कुल विलीन होकर बड़े जातीय समूहों—जातियों में परिणत हुए। उस जमाने में दो ट्रांसकाकेशियन जनता, आरमेनियाई एवं जौर्जियाइयों का उदय हुआ।

आरमेनिया : शताब्दियों बाद एक नया राज्य, आरमेनिया का उदय उरार्टू राज्य के इलाके में हुआ। ई० पू० द्वितीय शताब्दी में आरमेनिया राजतन्त्र का रूपीकरण हुआ जो एक दास-स्वामी स्वेच्छाचारिता के रूप में विकसित होकर अपने प्रारंभ-काल से ही पड़ोसी दुश्मनों के साथ लगातार युद्ध में लगा रहा। वह अरत शेष प्रथम और निगरान द्वितीय (ई० पू० २री और १ली शताब्दी) के शासन काल में अपनी आर्थिक एवं राजनीतिक शक्ति की चरम सीमा पर पहुँचा। प्राचीन आरमीनियाई संस्कृति की उभाड़ गुलामों, स्वतन्त्र किसानों और कारीगरों के निर्दय शोषण पर आधारित थी। बड़े शहर

और अभेद्य दुर्ग, सड़क एवं पुल बनाये गये तथा विभिन्न प्रकार के धातु खोद कर निकाले गये। ईरान, एशिया माइनर, सीरिया, मिस्र और अन्य देशों के साथ बड़े पैमाने पर व्यापार विकसित हुआ।

आरमेनियाई संस्कृति विकास की उन्नत अवस्था में पहुँची। यद्यपि हेल्लेनी प्रभाव से मुक्त नहीं थी तो भी आरमेनियाई वीर काव्य, रंगमंच, चित्रकला और मूर्त्तिकला ने अपनी परंपरागत विशेषताओं को जीवित रखा। ई० पूर्व ६९ ई० में आरमेनिया रोम द्वारा जीत लिया गया, लेकिन रोमन शासन बहुत कुछ नाम मात्र का था और शीघ्र ही उसका अन्त हो गया।

इवेरिया और कोललिस : इन दो प्राचीन दास-स्वामी राज्यों की स्थापना ट्रान्सकाकेशिया में आधुनिक जौर्जियाइयों के पूर्वजों ने की थी। कोललिस राजतन्त्र ने काला सागर के पूर्वी किनारे पर कब्जा किया और इवेरिया ट्रान्सकाकेशिया के केन्द्रीय पहाड़ी इलाके में फैला हुआ था। दोनों दास-स्वामी राज्य थे जिनमें कबाइली सम्बन्धों के मजबूत अवशिष्ट थे। ई० पू० ६५ ई० में दोनों राज्यों पर रोमवालों ने हमला किया था, लेकिन इवेरिया के जबर्दस्त प्रतिरोध के कारण वे राज्य की अखंडता को नष्ट नहीं कर सके, केवल उसके राजा रोमन साम्राज्य का "मित्र" बनने के लिए बाध्य किये गये। जहाँ तक कोललिस और उसके आसपास के क्षेत्रों का सम्बन्ध है, वे अनेक छोटे-छोटे उपराज्यों में बँट गये और रोम साम्राज्य के अधीन हो गये।

पुरातत्त्व और अन्य तथ्यों से प्राचीन जौर्जिया की उन्नत संस्कृति के बहुत से आश्चर्यजनक उदाहरण प्रकाश में आये

है। कोलखिस की राजधानी मदुसवत चिकने पत्थर के बड़े टुकड़ों से बने भवनों से भरा हुआ था। जॉर्जियाई कारीगरी काफी उन्नत थी; निम्नलिखित विशेपतायें वड़े पैमाने पर पायी जाती थीं—वर्त्तन वनाना, तलवारों का निर्माण, धातुओं का गलाना, राजगीरी, जौहरी आदि।

प्राचीन अलवानिया : प्राचीन अलवानिया* अजर वइजान (सोवियत यूनियन का एक गणराज्य) के उत्तरी भाग में ई० पू० ४ थी शताव्दी में पैदा हुआ। ट्रान्सकाकेशियाई देशों के समान दास-स्वामी अलवानिया में आदिम सामुदायिक व्यवस्था के प्रवल अवशेष पाये जाते थे।

पशुपालन और खेती प्रमुख आर्थिक प्रवृत्तियाँ थीं। धातुओं का गलाना काफी विकसित था और अलवानिया लोहा, ताम्वा और पीतल उत्पादन के प्रमुख केन्द्रों में एक था। अलवानियाई कारीगर तलवार, जवाहरात, मूर्त्तियाँ और वेल्ट वनाने में धातुओं का इस्तेमाल करते थे।

अलवानिया की अपनी लिखित भाषा थी जिससे वोली के आधार पर साहित्य का विकास संभव हुआ।

वे रोमन आक्रमणकारियों के खिलाफ भयंकर युद्ध में लगे हुए थे। अन्ततोगत्वा रोम साम्राज्य ने अलवानिया को अपना एक प्रान्त बना लिया और उसे अपना एक "मित्र" मानने लगा। इवेरिया की तरह उसकी पराधीनता केवल नाममात्र

---

* इस राज्य को गलती से आधुनिक अलबानिया नहीं समझें, जो वालकन प्रायद्वीप में स्थित है। दोनों के नाम की एकता एक संयोग की बात है।

की थी और वह दो शताब्दियों से अधिक अपनी स्वतन्त्रता कायम रख सका। ई० पू० ३री शताब्दी के प्रारंभ में अलबानिया फरासी साम्राज्य के अधीन हो गया।

उत्तरी काला सागर क्षेत्र में दास-स्वामी राज्य : उत्तरी काला सागरक्षेत्र का मैदान असंख्य बनजारों और बासिन्दे कबीलों के कब्जे में था। कुल सम्बन्धों के नष्ट होने के साथ (ई० पू० ७वीं से १ली शताब्दी तक) कबीलों का मैत्री सम्बन्ध बना जिसने राज्य के विकास की नींव डाली। उसी जमाने में काला सागर के तट पर यूनानी नगरों का उदय हुआ जो स्वतन्त्र, दास-स्वामी नगर-राज्यों के रूप में विकसित हुए : ओलबिया, टइरस, खेरसोनेस आदि उसी तरह के नगर राज्य थे। ई० पू० ५वीं शताब्दी में बोसपोरस राज्य, जिसकी राजधानी पनतीकापियम था, स्थापित हुआ। इस राज्य के इतिहास में स्थानीय कबालों और यूनानी उपनिवेशकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही।

प्राचीन बोसपोरस राज्य द्वारा अधिकृत क्षेत्र आज भी अपनी असाधारण उपजाऊ जमीन के लिए प्रसिद्ध है। इस विशेषता ने खेती और बड़ी मात्रा में बिक्री के लिए अनाज पैदा करने को प्रोत्साहित किया। राज्य की समृद्धि, ई० पू० ४थी शताब्दी में, अनाज के विशाल व्यापार पर निर्भर करती थी। अकेला एथेन्स बोसपोरस से १५००० टन अनाज हर साल आयात करता था। बोसपोरस मछली, चमड़ा और गुलामों का निर्यात करता था और यूनान, एशिया माइनर एवं एगियन समुद्र के द्वीपों से माल का आयात करता था।

बोसपोरस एक राजतन्त्र था—राजा के हाथ में सार्वभौम सत्ता केन्द्रित थी। गुलामों और स्वतन्त्र किसानों के निर्दय

शोषण से ई० पू० ४थी और ३री शताब्दी में वह देश अपने आर्थिक एवं साँस्कृतिक विकास की चोटी पर पहुँचा। ई० पू० २री शताब्दी के अन्त में बोसपोरस गम्भीर संकट से हिल गया। बाहर से उसपर नवगठित सीथिया राज्य, जो क्रिमिया में पैदा हुआ था, का खतरा उपस्थित हुआ, और भीतर से गुलामों एवं बंधुओं के बढ़ते हुए संघर्षों से, जो गुलाम साऊमाकस के नेतृत्व में एक शक्तिशाली जनविद्रोह में परिणत हुआ। विदेशी हस्तक्षेप से ही शासक वर्ग विद्रोह को दबा सका और उसमें हिस्सा लेनेवालों को निर्दयता से दण्डित कर सका। अन्दरूनी कलह से कमजोर और जर्जर बोसपोरस राज्य सबसे पहले पोनटस का शिकार बना और उसके बाद रोमन साम्राज्य का। ४थी शताब्दी के अन्तिम चरण में बर्बर हमलों से अन्तिम धक्का लगा जिससे उसका पतन हुआ।

मध्य एशिया और कजकिस्तान में दास-स्वामी राज्य : ई० पू० प्रथम सहस्राब्दी के प्रथमार्द्ध में उस इलाके में, जहाँ आज मध्य एशिया के सोवियत गणराज्य और कजकिस्तान का दक्षिणी हिस्सा है, विभिन्न पशुपालक और खेतिहर कबीले रहते थे। सकर दरिया, आमू दरिया, जेरावशन और अरल समुद्र के समतल में खेती खासतौर से व्यापक थी। कोई २५०० वर्ष पहले ये इलाके २०० कीलोमीटर तक की लम्बी नहरों से बंटे हुए थे। ई० पू० ७वीं और ६ठी शताब्दी में एशिया के इस भूभाग में प्रथम दासस्वामी राज्यों का उदय देखा गया—बैक्टरिया, सोगडियाना और ख्वारिजम। कई शताब्दियों तक ये राज्य विदेशी हमलावर—फारसी, यूनानी-मेसिडोनियाई और रोमनों के खिलाफ लगातार लड़ते रहे।

ई० पू० प्रथम सहस्राब्दी के अन्त में मध्य एशिया में कुशान राजशाही का उदय हुआ और जल्द ही एक शक्तिशाली राज्य में विकसित हुआ जिसका क्षेत्र अफगानिस्तान और उत्तरी भारत तक फैला हुआ था।

मध्य एशिया की जनता की अत्यधिक विकसित भौतिक और आध्यात्मिक संस्कृति थी। पुरातत्त्ववेत्ताओं ने बहुमूल्य चित्रों, मूर्त्तियों और गहनों को खोद निकाला है। उस जमाने के लोक-काव्य आगे चलकर, फिरदौसी, नवोई और सादी जैसे विश्वविख्यात कवियों के लिए प्रेरणा और अनुकरण का स्रोत बन गये।

२. प्राचीन यूनान में गुलामी प्रथा

यूनानी पोलिस—प्राचीन यूनान में दास-स्वामित्व की खास विशेषता नगर-राज्य या पोलिस से सम्बन्धित थी। यूनानियों ने नगर-राज्य को कम्यून की धारणा के अनुरूप किया था। लेकिन यह श्रमजीवियों का समुदाय नहीं रह गया, जैसा कि पूरब में था, बल्कि दास-स्वामियों का, एक छोटे अल्पमत का समुदाय बन गया था जिन्हें नागरिकों के सभी अधिकार प्राप्त थे : गुलामों और स्वतन्त्र लोगों के कुछ तबके को, जो मुख्यतः आसपास के इलाकों और पोलिसों से आये हुए थे, कोई नागरिक अधिकार नहीं थे।

पोलिस ऐसा नगर था जो चौड़ी दीवालों से घिरा हुआ होता था और जिसमें आसपास की तराइयों और द्वीपों की जनता भी सम्मिलित थी।

प्राचीन यूनानी दास-प्रथा की एक खास विशेपता थी—

ऋण के लिए दास बनाने की प्रथा का अन्त करना। यूनानी जनता की यह एक उल्लेखनीय विजय थी।

यूनान में दो तरह के नगर-राज्य थे। एक में सभी दास-स्वामियों के हाथ में सत्ता थी—यह दास-स्वामी जनतन्त्र था। दूसरे में, सत्ता एक सुविधासंपन्न तबका—कुलीनों—के हाथ में केन्द्रित थी। इसमें नागरिक अधिकारों के पूरे उपभोग के लिए भूसम्पत्ति का रहना आवश्यक शर्त्त थी।

प्राचीन एथेन्स पहले तरीके के पोलिस का उदाहरण है और दूसरे तरह का उदाहरण स्पार्टा है।

गुलामों के घोर शोषण से यूनानी राज्य का तेजी से विकास हुआ; उनकी संख्या लड़ाई और गुलाम-व्यापार से लगातार बढ़ती गयी। दस्तकारी, जहाजरानी, व्यापार और कला के विकास के मुख्य तत्त्व गुलामों का शोषण था। एथेन्स के अधिकांश कर्मशालाओं में केवल गुलाम मजदूरों की नियुक्ति होती थी। आम तौर से छोटी कर्मशालायें होती थीं लेकिन अक्सर एक कर्मशाला में नियुक्त गुलामों की संख्या एक सौ से अधिक ही होती थी। इस तरह के सरल श्रम सहयोग से श्रम की उत्पादकता बढ़ी।

यद्यपि प्रारम्भ में यूनानी पोलिस के दास-स्वामी अर्थतन्त्र ने उत्पादक शक्तियों के विकास का विस्तृत मार्ग प्रशस्त किया पर जल्द ही वह उसके विकास की गति में बाधा बन गया क्योंकि गुलामों ने अपने श्रम की उत्पादकता बढ़ाने में दिलचस्पी खो दी।

दास सम्बन्धों के विकास के क्रम में पहले यूनान में और

वाद में रोम में, शारीरिक और मानसिक श्रम के बीच का

अन्तर, जो एशिया और अफ्रीका की दास-स्वामी निरंकुशता में पहले ही व्याप्त था, बढ़ने लगा।

इसका विश्लेषण यूनान की जनता के बीच और रोम के स्वतन्त्र लोगों के बीच, सभी प्रकार के शारीरिक श्रम के प्रति फैले हुए घृणापूर्ण रुख से किया जा सकता है।

जहाँ एक तरफ गुलामों की सेना के अभूतपूर्व विकास से छोटे स्वतंत्र किसान और कारीगर धीरे-धीरे गरीब होते गये वहाँ दूसरी तरफ उनमें शारीरिक श्रम के प्रति घृणा और उपेक्षा बढ़ती गयी, उसे वे स्वतन्त्र व्यक्ति के लिये प्रतिष्ठा के प्रतिकूल समझने लगे।

यूनानी नगर राज्य लगातार विदेशी हमले के शिकार थे।

ई० पू० पाँचवीं शताब्दी के अन्त में फारस के खूँखार हमले यूनान के लिए विशेष रूप से खतरे बन गये; महान फारसी साम्राज्य की पूरी शक्ति और प्रभुता के बावजूद, जो भारत से मिस्र तक फैला हुआ था, वह हारने से बच नहीं सका, क्योंकि इस लड़ाई में यूनान अपनी आजादी और स्वतन्त्रता के लिये लड़ रहा था और उसकी विजय का यही मुख्य कारण था।

लड़ाई से यूनानी दास-स्वामी राज्य को बड़ी संख्या में कैदी मिल गये जिन्हें गुलाम बना दिया गया; इससे यूनान भर में दास-स्वामी सम्बन्धों का और विकास हुआ और खास कर एथेन्स में, जहाँ गुलामों का जमाव असाधारण तौर से अधिक था।

भूमध्य सागर में फारस की समुद्री शक्ति के ह्रास तथा

इस क्षेत्र में व्यापार के विकास का यूनान के भविष्य पर बड़ा

प्रभाव पड़ा। यूनानी पोलिसों के भावी विकास का एक कारण यूनान की विजय थी।

ईसा पूर्व चौथी शताब्दी के अन्त में पोलिस व्यवस्था पर संकट के प्रारंभ का प्रथम लक्षण दिखाई पड़ा।

संकट के प्रमुख कारणों में से एक था: नगर राज्य का आर्थिक सम्बन्ध अपनी राजनीतिक सीमा से बाहर फैलना।

यूनानी नगरों के कमजोर होने का एक महत्त्वपूर्ण कारण क्षयकारी पेलोपनेशियाई युद्ध था (ईसा पूर्व ४३१-४०४) जो स्पार्टा के नेतृत्व में पेलोनेशिया संघ तथा एथेन्स के नेतृत्व में मरिने संघ के बीच में हुआ था।

केन्द्रीय दास-स्वामी राज्य की स्थापना : पोलिस व्यवस्था के कमजोर होने के साथ ही साथ बालकन प्रायद्वीप मैसडोनिया के उत्तरी भाग में एक दास-स्वामी राज्य विकसित हो रहा था। पेचीदी राजनीतिक चालबाजी और कुशल सैनिक हमलों के मेल से मेसडोन के राजा फिलिप द्वितीय ने यूनानी नगर राज्यों को, जो आंतरिक कलह से छिन्न-भिन्न थे, फतह कर लिया।

यूनान का एक राज्य में एकीकरण हुआ, लेकिन एकता की कृत्रिमता और विदेशी अपहरण-कर्त्ताओं की वजह से जनता में कटु मेसडोनियाविरोधी भावना फैल गयी।

मेसडोनियाई कुलीनों ने जनता के ध्यान को बटाने के लिए फारस पर हमला कर दिया और अपने लिये इस हमले से अपार संपत्ति, पूर्व का व्यापक क्षेत्र तथा अनेक गुलाम हासिल किया।

शक्तिशाली फारस साम्राज्य के खिलाफ आन्दोलन का

नेतृत्त्व अद्वितीय फौजी और राजनीतिक नेता महान सिकन्दर ने किया था।

उनके कमान में यूनानी-मेसडोनियाई सेना ने अपेक्षाकृत कम समय में (३३४-३२७ ईसा पूर्व) मिस्र और भारत के बीच एक विशाल भूभाग पर कब्जा कर लिया। बैबिलोन नगर इस विशाल साम्राज्य की राजधानी बनाया गया।

हैलेनी दुनिया और उत्तर अफ्रीका एवं एशिया के देशों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान के फलस्वरूप यूनानी तथा पूर्वी जनता एक दूसरे की सांस्कृतिक परम्परा से अवंगत हो गयी। यूनानी और पूर्वी संस्कृतियों का असाधारण मिश्रण हेल्लेनवाद की सारभूत विशेषता है। हेल्लेनवाद उस युग का नाम है जो सिकन्दर की विजय और बाद में हेल्लेनी राज्य के विकास एवं रोमनों द्वारा उनके जीत लेने के समय तक का काल है।

ऐसा लगेगा कि उस तरह का विशाल साम्राज्य एक सुदृढ़ राज्य बनेगा, लेकिन गुलामों और दास-स्वामियों के बीच, विजेता और विजित के बीच तथा दास-स्वामियों के विभिन्न समूहों के बीच मतभेद रहने से तथा आर्थिक एकता के अभाव में सिकन्दर के साम्राज्य की एकता कमजोर हो गई।

३२३ के ग्रीष्म-काल में उत्तराधिकारी की नियुक्ति किये विना महान विजेता की मृत्यु हुई। साम्राज्य बहुत से स्वतन्त्र छोटे-बड़े राज्यों में विभक्त हो गया। इनमें मतभेद और भी गहरा हो गया।

३. प्राचीन रोम में दास-स्वामी प्रथा की बुनियादी विशेषतायें

प्राचीन रोमन राज्य में गुलाम सभी भौतिक पदार्थों के मुख्य उत्पादक थे और गुलाम एवं दास-स्वामियों के बीच का वर्ग संघर्ष अत्यधिक तीव्र बन गया था।

रोम का इतिहास दास-स्वामी समाज की विशेष आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक प्रक्रिया का अध्ययन करने के लिये हमें पर्याप्त सामग्री प्रदान करता है।

दास-स्वामी समाज और राज्य का निर्माण: रोमन समाज पर उसकी प्रारंभिक अवस्था में अन्य अधिक विकसित समाजों का जो असर पड़ा उससे रोम में दास-स्वामी सम्बन्धों के शीघ्र विकास में सहायता मिली।

रोमवासियों का एक खासा बहुमत नीचे तबके के लोग थे (भूतपूर्व युद्धबंदी, विजित जिलों के वासिन्दे और स्वेच्छा से प्रवासी)। वे स्वतन्त्र थे, लेकिन उन्हें कोई राजनीतिक अधिकार नहीं था और वे धीरे-धीरे दिवालिया, गैररईस परिवारों में विलीन हो गये।

कुलीनतंत्र के खिलाफ जनता का संघर्ष: नीचे तबके के लोगों ने कुलीनों के खिलाफ जीजान से संघर्ष किया जिसका समर्थन फटेहाल नागरिकों ने किया। यह सम्पत्ति के वर्गीकरण के साथ करीब से जुटा हुआ था और कुल व्यवस्था के साथ उसका अन्त हुआ। नागरिक समुदाय में वे सब शरीक होने लगे जिनके पास भूसम्पत्ति थी, चाहे वह नीचे तबके के वंशधर हों या कुलीनों के। अतः सम्पत्ति ही सामाजिक विभाजन, समाज में व्यक्ति की जगह और भूमिका, निर्धारित करने का आधारभूत सिद्धान्त बन गयी। जहाँ नीचे तबके के

लोगों का ऊपरी हिस्सा कुलीनों में विलीन हो गया वहाँ नीचे का तबका अधिक गरीब बन गया। ईसा पूर्व ५०६ में राजतंत्र के पतन से और उसकी जगह एक गणराज्य की स्थापना से भी साधारण जनता को किसी तरह का फायदा नहीं हुआ।

प्रारम्भिक गणराज्य काल : आर्थिक विकास के साथ दास-श्रम की भूमिका बढ़ती गयी। फलस्वरूप राज्य अधिक से अधिक दास-स्वामियों और अन्य धनी तबकों की वर्ग-प्रभुता का साधन बन गया।

रोमन गणराज्य में सर्वोपरि सत्ता सिनेट के हाथ में थी। अन्तिम राजा के निष्कासन के बाद समान अधिकार वाले दो दण्डाधिकारियों की नियुक्ति हुई। वे सिनेट की अध्यक्षता करते थे और सेना पर उनका नियन्त्रण था। धीरे-धीरे कुछ नीचे दर्जे के दण्डाधिकारी—जिन्हें क्विस्टर्स और एडाइल कहा जाता था—भी होने लगे। चूंकि ये पद अवैतनिक होते थे, वे अक्सर धनी घराने के लोग होते थे। दण्डाधिकारियों में उच्चतर पद ग्रहण करने तथा सिनेट में प्रवेश का अधिकार कुलीनों को ही था।

कुलीनों तथा आम लोगों के बीच का संघर्ष कभी बन्द नहीं हुआ।

साधारण जनता ने कई सुविधायें हासिल कीं जिनमें कर्ज-गुलामी का अन्त करना सबसे महत्त्वपूर्ण था। दण्डाधिकारी के उच्चपद तक साधारण लोगों की पहुँच हुई और साधारण लोगों के ही बीच से निर्वाचित लोकप्रिय न्यायालयों की स्थापना करने में सफलता मिली। उन्हें कुलीन दण्डाधिकारियों

के फैसलों को, यदि वे आम लोगों के हितों के खिलाफ हो तो, रद्द करने का अधिकार मिला।

कुलीनों और साधारण जनता के बीच संघर्ष से सम्पत्ति के अन्तर के अनुसार समाज का विभाजन पूरा हुआ। प्राचीन कुलीन कुलों और साधारण लोगों का उच्च तबका का विलयन होकर एक सुविधासम्पन्न नया तबका—कुलीनों का बन गया।

साधारण (Plebs) का पुराना अर्थ लुप्त हो गया और वह निकृष्ट जनता के शोषित तबके का द्योतक बन गया।

प्रारम्भिक गणराज्य की परराष्ट्र नीति (ई० पू० ५वीं से ३री शताब्दी तक) का चरित्र रोम द्वारा अयेन्नी प्रायद्वीप को जीतने के लिए किये गये निरन्तर युद्ध से बना था। इस समय दास-स्वामी समाज और राज्य का रूपीकरण पूर्ण हो चुका था।

दास-स्वामी समाज का स्वर्णयुग : दास-स्वामी सम्बन्धों विकास से और शासक वर्ग द्वारा कृषि की समस्याओं को नये इलाकों को उपनिवेश बनाकर हल करने के लिए किये गये लगातार प्रयासों से रोमन राज्य की हमलावर नीति का उदय हुआ जो अयेन्नी प्रायद्वीप से बाहर नये कार्यक्षेत्र खोजने लगा। विस्तार के अपने प्रयत्नों से रोमन लोग उत्तर अफ्रीका के बड़े हिस्से' बालकान, एशिया माइनर, स्पेन, आधुनिक बेलजियम का क्षेत्र आदि का गुलाम बना सके जो रोम के प्रान्त बन गये और शासक दास-स्वामी वर्ग के सम्पन्न होने का स्रोत भी। साथ-ही-साथ असाधारण तौर से सस्ते गुलाम श्रमिकों के अत्यधिक जमाव की सुविधा प्राप्त हुई।

दास-श्रम की प्रधानता : दास-श्रम अधिक व्यापक होने के साथ उसने स्वतन्त्र श्रम को हटाना शुरू किया। यह प्रक्रिया

खास तौर से खेती के काम में दिखाई पड़ी जो रोम में सबसे

महत्त्वपूर्ण उत्पादन का क्षेत्र था। दास-श्रम के व्यापक इस्तेमाल से विशाल बागानें—लेटिफुण्डिया—का उदय हुआ जहाँ फसल मुख्यत: बिक्री के लिए पैदा की जाती थी। अपनी जीविका के साधनों से वंचित किसान धीरे-धीरे बड़े भूस्वामियों के रैयत बन गये या शहरी आबादी में विलीन हो गये; इन खेतिहरों का एक हिस्सा कारीगर बन गया, लेकिन बहुमत एक दूसरा तबका, वर्गमुक्त तत्त्व—चलता-फिरता जनसमूह बन गया। शासक वर्ग द्वारा दिये गये तुच्छ दान पर वे अपना जीवन-निर्वाह करते थे।

ई० पू० २री शताब्दी दासप्रथा के विकास में एक निर्णायक अवस्था थी क्योंकि दासता सामाजिक उत्पादन का बुनियादी स्वरूप बन रही थी।

व्यापार और महाजनी पूँजी का विकास : गुलामों का व्यापार व्यापक पैमाने पर विकसित हुआ। रोम और अन्य व्यापार के केन्द्रों में अनेक दास-बाजार कायम किये गये।

विदेशी व्यापार का अन्दरूनी व्यापार पर दबाव था। अनेक रोमन प्रान्त वास्तव में गुलाम बनाये गये क्षेत्र थे जो अपने मुख्य नगरों को कृषि उत्पादन, विलास के सामान, धातु के सामान, शराब और जैतून के तेल की आपूर्त्ति करते थे।

व्यापार के विकास और मुद्रा के प्रसार से महाजनी का विकास हुआ। कर वसूल करने वालों का समूह प्रकट हुआ जिन्होंने टैक्स वसूल करने का अधिकार खरीद लिया।

व्यापारी और महाजन धीरे-धीरे शासक वर्ग के नये तबके में विलीन हुए जो सरदार या मनसबदार के नाम से प्रसिद्ध थे।

रोमन समाज में आन्तरिक विभेद का तीव्र होना : गुलामों का शोषण बहुत वर्बर होने के साथ रोमन राज्य में मुख्य विभेद—दास-स्वामियों और दासों के बीच का विरोध जो भौतिक पदार्थों के निर्माण का सीधा परिणाम था—अधिक बढ़ा और गहरा हुआ। एक-एक कर गुलामों का विद्रोह हुआ।

गुलामों के बड़े विद्रोहों में से एक विद्रोह योद्धा और गुलाम स्पारटाकस के नेतृत्व में हुआ था।

योद्धागण, जो पेशेवर तलवार चलानेवाले होते थे, दास-स्वामियों के मनोरंजन के लिए एक दूसरे को मारने के लिए वाध्य किये जाते थे। उनकी कठिन जिन्दगी थी जो मुसीवत और अभाव से पूर्ण थी और जो किसी भी समय खतम हो सकती थी। ई० पू० ७४ वर्ष में स्पारटाकस के नेतृत्व में गुलामों का एक दल कापुआ में योद्धाओं के विद्यालय से भाग निकला और विसुवियस पहाड़ पर शरण लिया। यह छोटा-सा दल, शुरू में कुछ दर्जन थे, धीरे-धीरे वढ़कर ६०००० की एक सेना वन गया जो रोमन तरीके पर संगठित था और वह दास-स्वामियों के लिए भयावह वन गया।

स्वतन्त्र किसानों द्वारा गुलामों का दमन किया गया। एक सेनापति के रूप में स्पारटाकस की प्रतिभा तथा गुलामों की अदमनीय वहादुरी से रोमन सेना को अनेकों भारी धक्के लगे। ई० पू० ७१ तक रोमन साम्राज्य प्राचीन काल के एक वड़े गृहयुद्ध का मैदान था। अपनी तमाम सेना को एकत्र करके ही शासकवर्ग गुलामों के असाधारण आन्दोलन को दवा सका। गुलामों के पास, अपने नेताओं की महान क्षमताओं के बावजूद, उस प्राचीन काल में अपनी मुक्ति का कोई स्पष्ट

कार्मक्रम नहीं था और नहीं हो सकता था। स्पारटकस की हार का एक मुख्य कारण गुलामों के बीच आन्तरिक मतभेद था।

चाहे जो हो, इस विद्रोह का वड़ा ऐतिहासिक महत्त्व था। उसने दास प्रथा को आमतौर से भारी धक्का पहुँचाया और सवसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उसने मुक्ति आन्दोलन की परम्परा को मजबूत वनाया। स्पारटाकस का नाम विभिन्न देशों के श्रमजीवी जनता के वीच व्यापक रूप से परिचित और प्रिय है। उनके लिए यह नाम शोषण के जुए से श्रमजीवी जनता की मुक्ति के लिए निःस्वार्थ संघर्ष का प्रतीक वन गया है।

इसी जमाने में रोम और उसके प्रान्तों के वीच सम्बन्ध वहुत तनावपूर्ण वन गया। रोमन शासन के खिलाफ राष्ट्रीय युद्ध शुरू हुए। उसी समय धनी जमींदारों और गरीव किसानों के बीच संघर्ष छिड़ा हुआ था जो वरावर फैल रहा था। लेकिन तीव्र विभेद के बावजूद गुलामी प्रथा सम्पूर्ण रूप से अव भी संकट से दूर थी। ये संघर्ष दास-स्वामी राज्य--रोमन गणराज्य के खास तौर के संकट मात्र थे, लेकिन इस संकट में रोमन दास-स्वामी समाज के पतन के लक्षण निहित थे।

गणराज्य का पतन और रोमन साम्राज्य का रूपीकरण : गणराज्य के अन्दरूनी संकट ने एक गृहयुद्ध का रूप धारण किया जो ई० पू० प्रथम शताब्दी के मध्य में छिड़ गया और शासक वर्ग के कई तवके उस में फँस गये।

रोमन गणराज्य, जो वास्तव में रोमन नगर-राज्य पर आधारित था, की असफलता का परिणाम था जो इस विशाल औपनिवेशिक साम्राज्य के पूरे ढाँचे के भीतर नेतृत्वकारी

भूमिका अदा नहीं कर सका। दास-स्वामियों ने अपने शासन को मजबूत बनाने के लिए सैनिक अधिनायक-तन्त्र पर भरोसा किया। राज्य के अधिकारियों के पास रोमन प्रान्तों के दास-स्वामियों की पहुँच होने लगी। रोमन नगरों से ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण इटली से, सभी विजित इलाकों से नया रोमन दास-स्वामी राज्य—साम्राज्य—दास-स्वामियों के वर्ग-शासन के रूप में उभर आया।

सीजर (ई० पू० प्रथम शताब्दी के द्वितीय भाग में) और उनका दत्तक पुत्र एवं वैध उत्तराधिकारी औक्टेवियस अगस्तस (प्रथम ईसवी शताब्दी) के अधिनायकतन्त्र में नये ढंग के रोमन राज्य का उदय हुआ।

प्रथम शताब्दी का उत्तरार्द्ध और द्वितीय शताब्दी रोम की सर्वोच्च शक्ति और समृद्धि का युग रहा है, उसके क्षेत्रीय विस्तार का वह जमाना रहा है।

रोमन दास-स्वामी राज्य का पतन : समाज का ह्रास और पतन एक दिन में पूरा नहीं होता। यह एक लम्बी प्रक्रिया है जो धीरे-धीरे बढ़ती है और भिन्न-भिन्न कालों में अधिक या कम तीव्र रहती है। इस तरह रोमन साम्राज्य के ह्रास का प्रथम लक्षण उस समय परिलक्षित हुआ जब इस शक्ति-शाली राज्य पर किसी का खतरा नहीं मालूम होता था।

उन लक्षणों में से एक जो प्रथम ईसवी शताब्दी के अन्त में और द्वितीय शताब्दी के प्रारम्भ में प्रकट हुआ था वह दास-श्रम पर आधारित बागानप्रथा का धीरे-धीरे ह्रास था। गुलामों को अपने श्रम के परिणाम से कोई दिलचस्पी नहीं थी जिससे उत्पादन का स्तर बहुत ही नीचे था। लैटिफुण्डिया के मालिकों ने

निरीक्षण और दमन की एक पचौदी व्यवस्था लागू की जिससे उत्पादन का खर्च बढ़ गया।

धनी जमीन्दारों ने अक्सर अपनी जमीन्दारी में छोटे पैमाने पर खेती करना लाभदायक पाया। गुलामों को खेती के औजार दिये जाते थे और वे फसल के एक हिस्से के लिए जमीन पर काम करते थे। बागान टुकड़ों में बाँटे गये और छोटे-छोटे टुकड़े स्वतन्त्र किसानों को पट्टे पर दिये जाते थे। उनमें से कुछ नगद लगान देते थे और बाकी लोग (इनकी संख्या बढ़ती गयी) जिनिस में देते थे। ये खेतिहर धीरे-धीरे पराधीन किसानों में परिणत हुए। उनकी संख्या लगातार गरीब स्वतन्त्र किसानों से और मुक्त गुलामों से बढ़ती गयी।

निजी सम्पत्ति से अतिरिक्त प्रोत्साहन मिला, जो उत्पादक को उसकी आय के एक हिस्से के बदले में उधार दी जानेवाली सम्पत्ति होती थी।

दास प्रथा का संकट : दास प्रथा और दासता पर आधारित उत्पादन सम्बन्धों के आसन्न पतन के लक्षण, जो प्रथम ईसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में खासतौर से स्पष्ट दिखाई पड़ते थे, ३री ई० शताब्दी तक गहरा संकट बन गया था और सम्पूर्ण रोमन दास-स्वामी समाज पर छा गया।

दो **मुख्य विरोधी वर्ग**—दास और दास-स्वामियों की हैसियत में और उनके आपसी सम्बन्ध में काफी परिवर्त्तन आ गया। दास-स्वामी कुछ हदतक सीधी यातना देने वाला तरीका छोड़ने को बाध्य हुए जिससे गुलामों में अपने श्रम के परिणाम के प्रति दिलचस्पी बढ़ सके। उसी समय किसान अधिक-से-अधिक परावलम्बी बन रहे थे। इस प्रक्रिया ने स्वतन्त्र

व्यक्तियों और दासों को मिला दिया। औसत साधन के छोटे भूस्वामी और किसान अक्सर खेतिहर में बदल गये। रोमन नगर प्राचीन काल के सभी नगरों के समान स्वतंत्र संपत्ति-वालों का एक निगम था। इस प्रथा ने दास-स्वामी समाज के रूप में नगर का महत्त्व कम कर दिया।

स्वतन्त्र कारीगर भी, जो संघों में संगठित थे, दरिद्र बन गये।

भारी कर और सार्वजनिक जमीन के स्वायत्तीकरण के साथ नगर की अधिकांश आबादी के द्ररिद्र होने के फलस्वरूप रोमन नगर का ह्रास हुआ।

३री ई० शताब्दी में एक आर्थिक संकट होने से सभी सामाजिक ,अन्तर्विरोध बहुत गहरे हो गये। खेतिहर श्रमिक और नगरों के गरीब दास-स्वामियों के खिलाफ एक साथ उठने लगे।

प्रान्तों में अलग होने की प्रवृत्ति बढ़ गयी। आन्तरिक कलह से बहुत से समूह गद्दी के लिए लड़ने लगे। विभिन्न गुटों को बारी-बारी से समर्थन करने में सेना की बढ़ती हुई भूमिका होने लगी।

१९३-१९७ ई० के गृहयुद्ध में शासक वर्ग के कुछ तबके शरीक हुए और अन्ततोगत्वा देश को गहरे राजनीतिक संकट में पहुँचा दिया।

दास-स्वामी प्रणाली के उत्पादन का अन्तिम विनाश : खेतिहर श्रमिक प्रथा का विकास महत्त्वपूर्ण विशेषताओं में से एक है जो दास-स्वामी उत्पादन सम्बन्धों के ह्रास का कारण बना। ४थी ई० शताब्दी में बादशाह कनस्टान्टाईन के शासन में

खेतिहर श्रमिक अपनी जोत की जमीन से बंधे हुए थे। चाहे वह किसी भी पीढ़ी का हो खेतिहर भूस्वामियों की स्थाई सेवा में रहने के लिए वाध्य किया जाता था। इसने वास्तव में उसे बंधुआ वना दिया, लेकिन यह परिपाटी अब तक सामन्ती सम्बन्ध में विकसित नहीं हो सकी थी, क्योंकि दास-स्वामी राजनीतिक व्यवस्था अब तक सामन्तवाद के विकास में अड़-चन वनी रही।

केवल खेतिहर श्रमिकों की किस्मत में ही अर्धदास प्रथा नहीं पड़ी वल्कि कारीगरों का संघ भी उसका शिकार वना और उसके साथ शहरी आवादी की बढ़ती हुई गरीवी भी आयी।

दास-स्वामी उत्पादन के तरीके के ह्रास का शासक वर्ग के आन्तरिक सम्वन्धों पर गहरा असर था। दास-स्वामियों के वर्गहितों की रक्षा करने वाली संस्था के रूप में राज्य की अस्थाई सुदृढ़ता के साथ राजनीतिक अनैक्य पैदा हुआ। धनी भूस्वामी अधिक-से-अधिक केन्द्रीय सत्ता से स्वतन्त्र हो रहे थे। पूरी दरिद्रता से रक्षा पाने के लिए स्वतन्त्र किसानों ने अपने को भूस्वामियों के संरक्षण में रखा और अपने को और भी अधिक बंधन में पाया।

शक्तिशाली जन-विद्रोहों से दास-स्वामियों का शासन कम-जोर हुआ। सामाजिक और राजनीतिक संकट का विलयन हुआ। ३९५ ई० में रोमन साम्राज्य का पश्चिमी और पूर्वी साम्राज्य में बंट जाना इन संकटों का अधिक महत्त्वपूर्ण द्योतक था।

यूनान और रोम की संस्कृति और सिद्धान्त : यूनानी और

रोमन सभ्यता, जो अपने विकास के क्रम में कई मंजिलों से गुजरी है, ऐसे स्तर पर पहुँची जो प्राचीन दुनिया ने कभी नहीं देखा था। उसने बहुत-सी जातियों की संस्कृति पर स्थाई असर डाला। यूनान और रोम में दास-प्रथा के सुदृढ़ और समृद्ध होने के साथ शोषित जनता के सिद्धान्त और शासक वर्ग के सरकारी सिद्धान्त के बीच का अन्तर बढ़ गया। शासक वर्ग के भीतर विभिन्न समूहों के बीच का संघर्ष (कुलीनों और जनतन्त्रवादियों, साम्राज्य और गणतन्त्र के समर्थकों का संघर्ष) सैद्धान्तिक रुझानों में, खासकर दर्शन में, प्रतिबिम्बित होता था।

यूनान और रोम के पूरे इतिहास में भौतिकवाद और आदर्शवाद के बुनियादी दार्शनिक विचारों के बीच निरन्तर संघर्ष चलता था। आदर्शवाद, एक जोरदार धार्मिक सिद्धान्त के रूप में, विकास की प्रारम्भिक अवस्था में रहा और भौतिकवाद का उदय एक दार्शनिक विचार के रूप हुआ जो मनुष्य और प्रकृति के दैवी मूल को नहीं मानता। भौतिकवादी दार्शनिकों ने दो बुनियादी धारणाओं—विश्व का भौतिक आधार और अपनी बुद्धि से उसे जानने की क्षमता—की व्याख्या भिन्न रूपों में की।

यूनानी दर्शन में प्रथम भौतिकवादी प्रवृत्ति का प्रकाशन इयोनियाई परम्परा के अनुयाइयों ने किया जिनका नाम इयोनिया जिले के नाम पर हुआ। इस परम्परा के प्रमुख दार्शनिक थेल्स, अनाक्सिमनडर और अनक्सिमेनस थे। हिरैक्लिटस ने उनके विचारों को विकसित किया (ई० पू० छठी शताब्दी) जिसने आग को सभी वस्तुओं का भौतिक

आधार माना। उन्होंने द्वन्द्ववाद के कुछ पहलुओं को भी प्रतिपादित किया। भौतिकवादी परम्परा के वहुत से यूनानी दार्शनिकों ने (ल्यूसियस और डेमोक्रिटस) वस्तु के आणविक रचना का सिद्धान्त प्रस्तुत किया; उनका खयाल था कि अणु, सूक्ष्म अदृश्य कण, अपने विभिन्न प्रकार के मिश्रण से विश्व की एकता और विविधता निर्धारित करते हैं।

इन सिद्धान्तों का आगे विकास यूनानी एपिकूरस और रोमन कवि लूक्रेटिस ने किया।

आदर्शवादी विचारों के प्रतिपादकों में एक था यूनानी गणितज्ञ पीथागोरस और उसके वहुत से अनुयाई (ई० पू० ५वीं शताब्दी)। उन्होंने विश्व की भौतिक रचना का खण्डन किया और इस आदर्श का प्रतिपादन किया कि संख्या ही सभी वस्तुओं का तत्त्व है। वे आत्मा की अमरता पर विश्वास करते थे जैसा कि धर्म का दावा है।

यूनान के सबसे बड़े आदर्शवादी सुकरात और प्लेटो थे (ई० पू० ५ से ४ शताब्दी तक)। सुकरात के एक अनुयाई प्लेटो का ख्याल था कि चारो तरफ की दुनिया के सभी तत्त्व और दृश्य सनातन और अपरिवर्त्तनीय भावना का कमजोर एवं धुँधला प्रतिविम्ब मात्र है। प्लेटो ने भौतिकवादियों का मुकावला केवल अपने दर्शन के वल पर ही नहीं किया। उन्होंने डेमोक्रेटस के अनुयाइयों पर अपराध कर्म का आरोप लगाया जिसके लिए एथेन्स के कानून के अनुसार मृत्युदण्ड होता था; उन्होंने डेमोक्रेटस की सभी रचनायें खरीद कर जला देने की धमकी दी। दो दलों के वीच भयंकर संघर्ष के मुख्य कारण थे कि भौतिकवादी आमतौर से प्रगतिशील, जनतान्त्रिक विचारों के

समर्थक थे जब कि आदर्शवादियों का समर्थन प्रतिक्रिया-

वादी, कुलीन तबके करते थे।

प्राचीन दर्शन में अरस्तू का एक महत्त्वपूर्ण स्थान था (ई० पू० ४थी शताब्दी)। यद्यपि वे एक दृढ़ भौतिकवादी नहीं थे तो भी प्लेटो के सिद्धान्तों की कठोर तर्कपूर्ण आलोचना के लिये वे प्रसिद्ध हैं।

विज्ञान : यूनानी नगर राज्य के निर्माण के समय विज्ञान का, जैसा वह है, शाखाओं में विभाजन नहीं हो पाया था लेकिन ज्ञान के सभी पहलुओं के समान उसका भी अस्तित्व था। यह समय के अल्प ज्ञान का फल था कि उत्पादक शक्तियां अब तक अविकसित थीं। ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी में ही यूनान में आर्थिक और राजनीतिक विकास इस हद तक हुआ कि विभिन्न विज्ञानों का विकास हुआ—गणित, ज्योतिष, चिकित्सा, इतिहास, भौतिक विज्ञान आदि। महान सिकन्दर के अभियान से इस प्रक्रिया को नया प्रोत्साहन मिला जिससे यूनान और पूर्वी संस्कृति की पारस्परिक समृद्धि हुई। इस नवीन हेल्लेनी युग ने प्रशस्त वैज्ञानिकों को पैदा किया जैसे भूगोलविज्ञ एरटोथीन, गणितज्ञ और शिल्पी आर्चिमेडेस और अन्य लोग।

यूनानी विज्ञान ने जो सफलता हासिल की उसका स्वागत रोम ने किया जहाँ वह और विकास के लिये एक आधार बना। रोमन वैज्ञानिक विचार के एक महान प्रतिनिधि थे मार्कस टेरेन्टियस वारो जो गणतांत्रिक युग में जीवित थे। वे एक विशाल वैज्ञानिक विश्व-कोष और विज्ञान की असंख्य शाखाएँ, भाषा से लेकर कृषि विज्ञान तक के विषयों पर अनेक निबंधों के रचयिता के रूप में प्रसिद्ध थे।

रोमवासी कानून और न्यायशास्त्र में असाधारण सफल-ताओं के लिये प्रसिद्ध हुए । जूलियस सीजर, सैल्लुस्तियस, टेसिटस, प्लुटार्क और अप्पियन जैसे प्रमुख लेखकों द्वारा लिखित इतिहास और मानव जाति वर्णन सम्बन्धी अनेक रचनायें आज भी महत्त्वपूर्ण हैं ।

कला : प्राचीन यूनान और रोम ने कला के सर्वोत्कृष्ट अद्वितीय रचनाओं से विश्व को समृद्ध किया और विश्व सांस्कृतिक भण्डार को उनकी यह देन है ।

यूनान की साहित्यिक रचनाओं का प्रथम उदाहरण—पुरान और होमर का इलियड और ओडिसी अपने गहरे चिंतन, परिपूर्ण आकार और मानव कामनाओं, विचारों और भावनाओं का वास्तविक (कल्पना के तत्व एवं धार्मिक ढाँचे के बावजूद) चित्रण से पाठकों को प्रभावित करता है ।

प्राचीन यूनानी साहित्य बहुत से अद्वितीय लेखकों की रचनाओं में जीवित है—जैसे अरिस्टोफिन्स जिन्होंने बहुत सी व्यङ्गपूर्ण सुखांत रचनायें की, सोफोकल्स, सैसस्काइलेस और यूरिपिडस जो अनेक दुःखांतों के रचयिता थे । कथा-लेखक ईसप और अन्य अनेक लेखक थे । "वर्क्स ऐण्ड डेज" का विशेष उल्लेख आवश्यक है जिसमें लेखक ने बहुत ही अनुभूति के साथ आम किसान की दैनिक जिंदगी और कार्यों का वर्णन किया है ।

रोमन साहित्य यूनान और हेल्लेनी दुनिया से सिर्फ प्रभावित ही नहीं था, बल्कि अनेक आश्चर्यजनक साहित्यिक रचनायें भी कीं—वषय और शैली में मौलिक । रोमन कवि कटुल्लस, वरजिल, ओविड और होरेस ने वश्वव्यापी ख्याति

हासिल की थी। सदियों बाद उनकी रचनाओं ने दांते (इटली) पुश्किन (रूस) मिकिवीज (पोलैण्ड) जैसे महान यूरोपीय कवियों को भी प्रभावित किया था। उपन्यास एक विशेष शैली के रूप में (अपुलुईस का सोने का गधा, पेट्रोनियस का सटाइरिक) रोम में खास तौर से व्यापक बन गया।

नाट्य-कला भी यूनान और रोम में काफी विकसित थी। उदाहरण के लिए एथेन्स में वह सामाजिक जीवन का एक अविभाज्य अंग बन गयी। रोम में, दास-स्वामी संस्कृति के बर्बर तरीके के तलवार-युद्ध के साथ उन्नत कलात्मक नाटकों का प्रदर्शन भी होता था। रोम के लोग उन प्रदर्शनों से आनन्दित होते थे जहाँ गुलाम तलवार-चालक आपस में लड़ते थे और हर्षोन्मत्त भीड़ के सामने मरते थे।

यूनान और रोम के समाज में भाषणकला का एक विशेष स्थान था। खासतौर से लइसियस, डेमेस्तेनेस (यूनान) और सिसेरो (रोम) के भाषणों में उसका विकास पाया गया जो अपने असाधारण ओज के लिए प्रसिद्ध थे।

यूनान और रोम के मूर्त्ति-निर्माण के कार्य इतने प्रसिद्ध हैं कि उनके विशेष उल्लेख की कोई आवश्यकता नहीं है।

संगीत, गान और नृत्य का विकास रोम की अपेक्षा यूनान में उन्नत स्तर पर पहुँचा।

रोम साम्राज्य की संस्कृति को यूनान, हेल्लेनिक दुनिया और खुद रोम की संस्कृतियों का सजीव समन्वय माना जा सकता है। एक रोमन-हेल्लेनी संस्कृति का उदय हुआ जो साम्राज्य की जिन्दगी की प्रथम शताब्दी तक विकसित होती रही। लेकिन चौथी-पाँचवीं ई० शताब्दी में, जो दास-स्वामित्व

पर आधारित उत्पादन के तरीके के संकट का युग था, आम सांस्कृतिक स्तर का क्रमिक ह्रास देखा गया, जिसकी प्रक्रिया में ईसाई धर्म की प्रमुख भूमिका रही । जहाँ एक तरफ ईसाई धर्म ने यूनानी-रोमन संस्कृति के कुछ तत्त्वों का इस्तेमाल किया वहाँ दूसरी ओर उसने "पापी" मानव शरीर का चित्रण करनेवाले सभी मूर्त्ति निर्माण, सभी दार्शनिक रुझान, सभी "नास्तिक" ग्रन्थों और "दानवी" उत्सवों के खिलाफ विध्वंसक युद्ध छेड़ दिया ।

ईसाई धर्म का उदय :—जिस शोचनीय अवस्था में आम लोग, गुलाम, अर्धगुलाम और पददलित लोग पहुँच गये उसी से ईसाई धर्म रंगमंच पर आया । दास-स्वामियों ने शोषित जनता, पददलित कबीलों और जनता के क्रान्तिकारी आन्दोलन का खूनी कार्रवाई से दमन किया । लोगों ने इस दुनिया में फिर स्वतंत्र होने की सारी आशायें छोड़ दीं । इसके फलस्वरूप प्राचीन पूर्वी धर्मों का उदय हुआ जिसने लोगों को परलोक में सुखी जीवन का आश्वासन दिया । उदीयमान ईसाई धर्म ने इन प्राचीन धर्मों के बहुत से तत्त्वों को आत्मसात किया । प्रारंभ में ईसाई धर्म पददलित और अभागे लोगों का धर्म था, लेकिन बाद में समाज के एक खुशहाल तबके ने उसका अनुसरण कर लिया जो किसी न किसी कारण से वर्त्तमान शासन के खिलाफ थे । ईसाई समुदाय की सादगी और सभी सदस्यों की एकता जल्द ही लुप्त हो गयी । समुदायों के हाथ में धन के केन्द्रीकरण तथा धार्मिक अनुष्ठानों के अधिक पेचीदे होने के साथ सामुदायिक नेताओं के एक तबके—पुरोहितों का अलगाव हुआ । गिरजों के एक संगठन की स्थापना हुई

जिसमें पेचीदे पुरोहित तंत्र की प्रधानता थी।

शासक वर्ग सुख के बारे में ईसाई धर्म की शिक्षा से अवगत हुए, जो इस दुनिया में प्राप्त नहीं हो सकता था बल्कि परलोक में आज्ञाकारिता और नम्रता के पुरस्कार के रूप में प्राप्त हो सकता था। यह एक ऐसा उज्ज्वल सैद्धांतिक साधन था जिससे लोगों को आध्यात्मिक तौर से निःशस्त्र करके उन्हें पूरे तौर से वशीभूत कर सकते थे।

४थी ई० शताब्दी में ईसाई धर्म एक प्रमुख सरकारी धर्म बन गया। ३री ई० शताब्दी के मध्य में वह खुद हमले का शिकार था, लेकिन उसके बाद उसने स्वयं गैर-ईसाई धर्मों और उनके अनुयाइयों पर हमले की घोषणा की।

रोमन साम्राज्य का पतन :—चौथी और पाँचवीं ई० सदियों में दासता के नाम से प्रसिद्ध सामाजिक-आर्थिक संगठन का पूरा ह्रास हुआ। दास-श्रम अनेक शक्तियों के आगे विकास में वास्तविक बाधक बन गया था। इस समय तक कृषिकला एक विज्ञान के रूप में कृषि उत्पादकता में काफी विकास करने के लिए पर्याप्त तकनीकी ज्ञान का संचय कर चुकी थी; लेकिन उसके ज्ञान के इस्तेमाल के लिए किसानों में ध्यानपूर्ण सजग रुख की आवश्यकता थी। यह तभी हो सकता था जब कि उसे अपने श्रम के मूल्य पर दिलचस्पी हो। ऐतिहासिक विकास ने खुद अन्य अधिक विकसित उत्पादन-सम्बन्धों का सवाल उठाया।

लगातार होनेवाले जनविद्रोह दास-प्रथा को कमजोर कर रहे थे। दक्षिणी प्रान्तों में (रोमन अफ्रीका) दासों, अर्धदासों और कारीगरों के आन्दोलन और विद्रोह संपूर्ण चौथी और

पाँचवीं शताब्दी में होते रहे। उत्तर में (गाल्ल और उत्तरी स्पेन) ३री, ४थी और ५वीं सदियों में विद्रोह होते रहे, जो अक्सर भयंकर वगावत और आजादी की लड़ाई का रूप धारण करते थे। उसी समय रोमन साम्राज्य पर पड़ोसी विरोधी कबीलों ने हमला किया। शुरू में रोमन सम्राटों ने जर्मन भड़ैत सेना का इस्तेमाल करके परिस्थिति को बचाने का प्रयास किया, लेकिन वे खुद जल्द ही अपने बर्बर सरदारों के हाथ के कठपुतले बन गये। ४७६ ई० में एक जर्मन सरदार ने, जिसका नाम ओडोअसेर था, अन्तिम रोमन सम्राट को अपदस्थ कर दिया। उस दिन को परंपरानुसार पश्चिमी रोमन साम्राज्य के अंतिम पतन का दिन माना जाता है। चूंकि दास-स्वामी तरीके का उत्पादन रोमन साम्राज्य में चोटी पर पहुँचा हुआ था,, उसके पतन को व्यापक ऐतिहासिक अर्थ में दास-प्रथा का पतन माना जा सकता है।

●

अध्याय ३

सामन्तवादी समाज

जैसे दास-स्वामी सम्बन्धों का विकास आदिम-सामुदायिक व्यवस्था के भीतर हुआ था उसी तरह सामंती सम्बन्धों का रूपीकरण दास प्रथा के भीतर ही हुआ था।

स्वाभाविक तौर से किसानों की संपत्ति पर धनी भूस्वामियों ने पहले ही कब्जा कर लिया था जिनके बड़े बागान गुलामों और अर्धगुलामों के श्रम का शोषण किया करते थे। यही लोग सामंती शासन के पूर्वपुरुष थे।

उदीयमान सामन्ती ढंग का उत्पादन अबतक प्रबल दास प्रथा से अवरुद्ध था। एक सामाजिक क्रांति ही इस प्रथा का अन्त कर सकती थी और नये सामंती ढाँचे के लिए रास्ता साफ कर सकती थी जिसको मार्क्सवादी इतिहासज्ञों ने मध्य युग के साथ पाया है।

सामंती सम्बन्धों के प्रादुर्भाव से सम्बन्धित युग को सामंती विकास का प्रथम चरण कहा जाता है, अन्यथा वह प्रारम्भिक मध्ययुग के नाम से प्रसिद्ध है।

यूरोप में यह काल ५वीं सदी से ११वीं सदी के प्रारंभ तक का काल माना जाता है; एशिया में, चित्र में कुछ अन्तर है: चीन में और पीछे ३री शताब्दी में, भारत में ४ से ५वीं शताब्दी तक, अरब में ७वीं शताब्दी में यह प्रारंभ हुआ। चीन में ८वीं शताब्दी के अन्त तक पूर्ण रूप से स्थापित हुआ और ११वीं

१२वीं शताब्दी तक अन्य अधिकांश देशों में स्थापित हुआ ।

विकसित सामंतवाद का युग सामंती-विकास का दूसरा काल समझा जाता है । इसी जमाने में श्रम का दूसरा महत्त्व-पूर्ण विभाजन हुआ : दस्तकारी से कृषि पृथक कर दी गयी । शहर व्यावसायिक केन्द्र के रूप में विकसित हुए जहाँ कारीगरों ने अपने व्यवसाय केन्द्रित किये । यूरोप में यह काल ११ से १५वीं सदी तक रहा, एशिया और उत्तरी अफ्रीका में इसका प्रादुर्भाव ९वीं-११वीं शताब्दियों में हुआ और १५वीं शताब्दी तक जारी रहा ।

सामंती विकास के इस काल की यही विशेषता रही है कि इसमें सामंती सम्बन्धों का ह्रास और पूँजीवाद का विकास हुआ और यह अन्तिम मध्यकाल के नाम से पुकारा जाता है; यूरोप में १५वीं सदी से १७वीं सदी के मध्य तक । यूरोपीय उपनिवेशवादियों के विस्तार से एशिया और अफ्रीका के देशों में सामंतवाद और भी लम्बे अरसे तक रहा । सब मिलाकर १७वीं शताब्दी को सामंतवाद के पतन और पूँजीवाद के उदय का समय माना जा सकता है ।

१. सामंती सम्बन्धों का प्रारंभ (प्रारंभिक मध्य काल)

यह काल सामंती तरीकों के उत्पादन की बुनियादी विशेषताओं के प्रादुर्भाव से सम्बन्धित है, जैसे सामन्ती सरदारों का जमीन पर स्वामित्व और किसानों और कारीगरों की मेहनत का फल छीनने के लिए विभिन्न प्रकार के सामन्ती भूमि कर ।

पश्चिमी यूरोप में सामन्तवाद का विकास :—रोम के दास-स्वामी समाज से सम्बन्ध स्थापित होने से प्राचीन जर्मनी और

स्लावी कबीलों को आदिम समुदाय से सीधे सामन्ती सम्बन्ध का विकास करना सम्भव हुआ। रोमन साम्राज्य के ह्रास के के दिनों में ये दोनों जातियाँ समाज के वर्गों में विभाजित होने का अनुभव कर रही थीं, जो बिलकुल आदिम पितृसत्तात्मक चरित्र का था।

कबीलों और रोमन राज्य के बीच संघर्ष बढ़ने से वे रोम की सत्ता का अन्त करने के लिए बहुत इच्छुक थे।

पश्चिमी रोमन साम्राज्य और बइजानटियम पर जर्मनी और स्लावी कबीलों के हमले के समय गुलामों और अर्धगुलामों ने उनका समर्थन किया, क्योंकि वे अपने साथ एक नयी व्यवस्था लाये जो स्थानीय जनता के लिए बहुत लाभदायक था।

रोमन भूस्वामियों के कब्जे की जमीन और गुलामों को छीन कर, जर्मनों ने रोमनों की अपेक्षा हल्के तरीके का दास शोषण लागू किया। वे अपने सामुदायिक रूप के संगठन को भी साथ लाये जिसने सबसे पहले स्थानीय स्वतंत्र किसानों की जिन्दगी को बेहतर बनाया।

प्राचीन जर्मनों की सामुदायिक व्यवस्था के स्वरूप और परम्परायें सामन्ती तत्वों से मिश्रित थीं जिसका मरणोन्मुख दास प्रथा के भीतर ही जन्म हुआ था। दोनों प्रक्रियाओं के मिश्रण से नये सामन्ती सम्बन्धों के शीघ्र विकास को प्रोत्साहन मिला। जर्मन कबीलों ने, जैसे फ्रैन्क जो आधुनिक फ्रांस की भूमि पर बसे हुए थे, रोमन साम्राज्य के उत्पादक शक्तियों के उन्नत स्तर के विकास को आत्मसात किया था। अपनी छोटी संख्या के कारण (रोम के क्षेत्र में बसे हुए देशो कबीलों की तुलना में) वे परम्परागत भूमि व्यवस्था अपनाने के लिए बाध्य हुए।

हिस्सा रहता है अतः यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण है कि यह निर्धारित किया जाय कि सामंतवाद के आगमन के समय उसका विकास किस स्तर पर पहुंच गया था।

लोहे के इस्तेमाल के विकास के साथ भारी और हल्के हलों और अन्य कृषि उपकरणों की वृद्धि हुई। कृषि में आगे विकास हुआ। खेती की तीन व्यवस्था व्यापक बन गयी। अंगूर की खेती में वृद्धि हुई जिससे अंगूर की पेराई में भी सुधार हुआ। अन्य तकनीकी सुधार लागू किये गये जैसे हवाचक्की। दास प्रथा के समय में ही जो जल-चक्की प्रचलित थी उसका भी सुधार किया गया—ऊपरी धक्का मारने वाला पहिया प्रकट हुआ।

फिर भी सामन्ती युग में उत्पादन में जो प्रगति हुई उससे सामन्ती अर्थव्यवस्था के सभी अवस्थाओं में प्रचलित सभी तकनीकी उपकरणों के रूढ़िगत चरित्र नष्ट नहीं हो सके।

सामन्तवाद में उत्पादन सम्बन्ध और संपत्ति : सामन्तवाद में उत्पादन सम्बन्धों की परिभाषा करने के लिए हमें सबसे पहले यह तय करना पड़ेगा कि उत्पादन के साधनों के कौन स्वामी थे, उन साधनों का किस तरह इस्तेमाल हुआ, श्रम के उत्पादन का कैसे वितरण होता था, और इसका असर विभिन्न सामाजिक समूहों और वर्गों पर कैसे पड़ा तथा उत्पादन की प्रक्रिया में उनका पारस्परिक सम्बन्ध कैसा रहा।

सामन्त-काल के प्रारंभिक दिनों में उत्पादन का मुख्य साधन जमीन थी जिस पर सामन्ती प्रभु का स्वामित्त्व था; किसानों द्वारा स्वतंत्र जोत की भू-व्यवस्था बहुत कम थी। कृषक समुदाय फिर भी सदियों तक एक विशेष सामाजिक संगठन के

रूप में जीवित रहा और किसानों के हितों की रक्षा करता था। सामन्त सरदार अपनी जमीन की व्यवस्था दो प्रकार से करते थे और खेती की जमीन तीन तबकों में बंटी हुई थी। किसान की झोपड़ी और उसके इर्दगिर्द का बागान उसकी अपनी संपत्ति होती थी; जोतने वाली जमीन समुदाय की संपत्ति होती थी और समुदाय के सदस्यों के बीच जोतने के लिए बराबर पुनः वितरित होती थी; जंगल, चरागाह और अन्य संपत्ति अविभाज्य रूप से समुदाय की होती थी।

यह परिस्थिति धीरे-धीरे बदली। अपनी ज़मीन से फायदा उठाने के लिए सरदार ने जोतने वाली ज़मीन का प्रबन्ध करने के लिए एक संचालक की नियुक्ति की। जमीन के प्रथम तरीके के प्रबन्ध में किसान अपने सरदारों के लिए उस की जमीन्दारी में काम करता था और सरदार को जमीन पर एकाधिपत्य था। दूसरी व्यवस्था में, जो उसी समय प्रचलित थी, जमीन किसानों की खेती में बंटी हुई थी; किसान एक संचालक के बिना जमीन जोतते थे और फसल का हिस्सा नजराने के रूप में जमीन्दार को देते थे। जंगल, चरागाह आदि सरदार की संपत्ति होती थी, लेकिन किसानों को समुदाय द्वारा कुछ अधिकार दिये जाते थे (चराना, मछली मारना, जलावन काटना, आदि)। सामन्ती नियम लागू किये गये जिसके अनुसार किसानों पर अपने सरदार की जमीन्दारी से बाहर जाने पर रोक थी अर्थात्, वह अर्धगुलाम बन गया।

किसानों के शोषण की इन दो प्रथाओं से छोटे पैमाने के उत्पादन की प्रधानता हुई। उत्पादक शक्तियां तितर-बितर थीं; इससे सामन्ती अर्थ-व्यवस्था के विकास में बाधा उपस्थित हुई,

जो मुख्यतः स्वावलम्बी समुदाय से सम्बन्धित थी, उस तरह की व्यवस्था प्राकृतिक अर्थव्यवस्था के नाम से प्रसिद्ध है और खास तौर से प्रारम्भिक मध्ययुग की विशेषता थी।

उस समय स्वावलम्बी अर्थव्यवस्था के लिए यह जरूरी था कि प्रत्येक जमीन्दारी अपने मालिक और उनके अर्धगुलामों के लिए सभी निर्वाह के साधन पैदा करे। शाही जमीन से ही राजा और उनके दरबार का भी भरण-पोषण होता था। दास प्रथा के आर्थिक ह्रास ने कृषि से कारीगरी अलग की थी। रोमन साम्राज्य के पतन ने उन्हें फिर मिलाया ताकि स्थानीय उत्पादन से मालिक और उनके अर्धगुलामों की आवश्यकताओं की पूर्त्ति हो सके। जमींदारी में पैदा की गई चीजों में करीब-करीब सभी का उपभोग वहीं होता था। हस्तकला का एक गौण हिस्सा ही अदला बदली के लिए जाता था।

किसानों के श्रम की पैदावार सामन्ती कर के रूप में मालिक लेते थे, जो सामन्ती व्यवस्था में संपूर्ण उत्पादन का उद्देश्य होता था।

जैसे-जैसे सामन्तवाद का विकास हुआ विभिन्न प्रकार के सामन्ती करों का उदय हुआ। कर देने की एक पुरानी प्रथा सेवा के रूप में देने की थी जिसके मुताबिक किसान काफी समय तक मालिक की जमीन जोतने के लिए बाध्य किया जाता था। वह जमींदारी में विभिन्न भवन-निर्माण के कार्य करने, पैदावार एक जगह से दूसरी जगह ले जाने और कारीगरी के कामों में हिस्सा लेने के लिए बाध्य था।

किसानों के श्रम की उत्पादकता में वृद्धि होने के साथ सामन्ती मालिकों ने देखा कि किसानों पर उत्पादन का भार

हस्तांतरित करना सबसे लाभदायक है। कर जिनिस में देना

शुरू हुआ। इस तरह एक दूसरे प्रकार के सामन्ती कर का उदय हुआ।

किसानों पर लगाये जाने वाले कर का बड़ा हिस्सा सामन्त मालिक द्वारा दी गई जमीन और खेती के औजारों के उपयोग का किराया होता था। जमीन की इन बाध्यताओं में चरागाह, हरितमैदान और अन्य जमीन के लिए, जो पहले सामूहिक सम्पत्ति होती थी लेकिन बाद में सामन्तों द्वारा कब्जा कर ली गई थी, किराया देना भी शामिल था।

मध्ययुग के प्रारम्भ में श्रम द्वारा कर देना (बैठ-बेगारी) बहुत व्यापक था और जिनिस में कर देना एक अपवाद होता था।

व्यापार और दस्तकारी के केन्द्र के रूप में नगरों के विकास के साथ मुद्रा में दिये जानेवाले कर को बड़ा महत्त्व दिया जाने लगा। मालिक की दिलचस्पी अपनी जमीन्दारी के उत्पादन तक ही सीमित नहीं रही। अन्य जगह पैदा की गई चीजों को खरीदने के लिए उन्होंने देखा कि मुद्रा में कर लेना अधिक लाभदायक है।

जब कर जिनिस में और मुद्रा में देने की प्रथा का विकास हुआ तब सामन्ती कर का बड़ा हिस्सा जमीन के इस्ते-माल के लिए दिया जाता था। फिर भी मालिक द्वारा लिये जाने वाले कर या अतिरिक्त उत्पादन में बहुत से अन्य उत्तर-दायित्व भी सम्मिलित थे जो मुख्यतः कर और अदायगी के रूप में थे। वे थे, सर्वप्रथम, बन्धुआ अदायगी, अदालती और प्रशासनिक जुर्माने। उदाहरण के तौर पर, फ्रांस में बन्धुआ

अदायगी, अर्धगुलामों के परिवार के प्रत्येक सदस्यों पर लगाये जानेवाला कर था। कुछ जगहों पर मालिकों को यह अधिकार भी था कि अर्धगुलाम की नवविवाहिता वधू के साथ "पहली रात" बितावे। बाद में इस अधिकार के बदले में जिनिस या मुद्रा के रूप में एक कर लागू किया गया। उत्तराधिकार के हक के लिए भी अर्धगुलामों पर एक कर लगाया गया। अकसर अच्छा जानवर, अच्छे कपड़े या एक महत्त्वपूर्ण घरेलू सामान मालिक को सौंप देना पड़ता था। मालिक अर्धगुलामों पर और भी बहुत सी अदायगियां लाद सकते थे (विवाह का अधिकार, निवास स्थान बदलने के लिए, निजी संपत्ति के हस्तांतरण करने के लिए आदि)।

मालिक अपने अर्धगुलामों के व्यक्तिगत, कानूनी और प्रशासनिक निर्भरता को अतिरिक्त आय का सिर्फ साधन ही नहीं मानते थे। जमीन के बदले में बाध्यताओं की व्यवस्था में ही अर्धगुलामों की आर्थिक गुलामी के अंकुर निहित थे। लेकिन जब तक किसानों की अपनी जान और औजार थे तब तक कुछ प्रकार के गैरआर्थिक दबाव से ही अपने उत्पादन का बड़ा हिस्सा अपने सामन्ती मालिक को देने के लिए वह बाध्य होता था। सामन्ती प्रभु को अपने प्रशासनिक क्षेत्र में पूर्ण स्वामी होना चाहिए था और अपने पास व्यापक न्यायिक और प्रशासनिक अधिकार केन्द्रित करना था। किसानों की व्यक्तिगत परतन्त्रता अलग-अलग होती थी जो संपूर्ण अर्धगुलामी से लेकर (hierarchical) धार्मिक असमता तक होती थी।

इस तरह गैर आर्थिक दबाव सामन्ती तरीके के उत्पादन की मुख्य विशेषताओं में एक था।

फ्रैंकों में किसानों की व्यक्तिगत अधीनता तब कायम हुई जब किसानों और समुदाय की जमीन धनी भूस्वामियों ने हथिया ली। स्वतन्त्र फ्रैंकी किसान बरबाद और दरिद्र होकर अपने शक्तिशाली पड़ोसियों से संरक्षण मांगने के लिए बाध्य हुए जिससे अपनी जिन्दगी और बची हुई संपत्ति बचा सकें।

प्रारंभिक सामन्ती राज्य : किसानों की भिन्न प्रकार की पराधीनता—व्यक्तिगत, न्यायिक और खास कर प्रशासनिक—विभिन्न प्रकार के नये राज्यों के साथ विकसित हुई जिससे सामन्ती समाज का ऊपरी ढांचा बना। प्रारंभ में सामन्ती राज्य (फ्रैंको और अन्य बर्बर राजतन्त्र) का प्राथमिक कार्य कब्जा किये गये क्षेत्रों में गुलामों और अर्धगुलामों के विद्रोह का दमन करना और इटली और रोम प्रान्त की स्थानीय जनता से नजराना वसूल करना था। बाद में सामन्ती राज्य का उद्देश्य अपने ही किसान समुदाय, जो एक जमाने में स्वतन्त्र थे, लेकिन जो अर्धगुलाम बन गये थे और जो उस हैसियत से शोषित थे, को दबाकर रखना था। प्रारंभिक सामन्ती राज्य अपना मुख्य कार्य बराबर करता रहा : भूस्वामियों का प्रभुत्व बनाये रखना।

फ्रैंकी सामन्ती राज्य का अंतिम रूप ८वीं और ९वीं शताब्दी में बना; राज्य की प्रमुख विशेषतायें थीं, सामन्ती अनैक्य और बहुत से धनी भूस्वामियों की राजनीतिक स्वाधीनता।

सामन्ती समाज का मुख्य विरोध : सामन्ती मालिक किसानों के, जो सभी भौतिक पदार्थों के स्वयं निर्माता थे, निर्दय शोषण से आय करते थे (बाद में कारीगरी का शोषण भी करते थे)। शोषण लगातार बढ़ता गया। सामन्ती समाज के दो बुनियादी

वर्ग—भूस्वामी और अर्धगुलाम का सम्बन्ध परस्पर विरोध का था तथा वर्गस्वार्थों के विषम प्रतिपक्षता (irreconcilable antithesis) पर आधारित था; अर्धगुलाम जो जनसंख्या का बहुमत थे, अल्पसंख्यक लेकिन सारी जमीन के मालिक भूस्वामियों द्वारा शोषित होते थे।

अन्य सामाजिक समूह, जैसे कारीगर, बुनियादी सामन्ती वर्गों के साथ-साथ रहते थे। दास-स्वामी और सामन्ती समाज, दोनों की एक समान विशेषता थी—विभिन्न जमीन्दारियों का अस्तित्व (विविध कानूनी हैसियत की)। एक मामले में अकेले एक वर्ग से कई जमीन्दारियां (रियासतें) बनी हुई थीं (मध्य युग में प्रमुख वर्ग सरदारों—आध्यात्मिक और धार्मिक—का होता था)। एक दूसरे मामले में अकेले एक रियासत (फ्रांस की "तीसरी रियासत") में कई सामाजिक तबकों के प्रतिनिधि सम्मिलित थे जो बाद में पृथक वर्गों और वर्ग-समूहों—किसान, कारीगर, व्यापारी और महाजन—में विकसित हुए।

फँकी स्वतन्त्र किसानों का पराधीन किसानों में सामूहिक परिवर्त्तन एक गंभीर वर्गसंघर्ष की स्थिति में हुआ जो भिन्न-भिन्न रूपों में हुआ जिसमें अर्धगुलामों का अपने मालिकों के कब्जे से भाग जाना और सशस्त्र विद्रोह भी शामिल थे। विद्रोह अपनी स्वयं स्फूर्तता और अनैक्य के कारण सफल नहीं हो सके। किसानों के लगातार होनेवाले वर्ग संघर्षों ने सामन्ती मालिकों को बाध्य किया कि वे अर्धगुलामों के लिए निश्चित कर्त्तव्यों को निर्धारित करें, जिसने एक हद तक उन्हें बेरोकटोक शोषण से बचाया।

सामन्ती समाज के विकास के साथ वर्ग शक्तियों का बल

विकास की मात्रा तय करने में निर्णायक भूमिका अदा करने लगा ।

फ्रैंकी राज्य के राजनीतिक ढांचे ने जनता को दबा कर रखने का काम किया। धनी सामन्ती मालिकों के पास अपनी सेना होती थी और विद्रोही को दबाने में मुख्य भूमिका राज सत्ता की होती थी जो संपूर्ण सामन्त वर्ग का प्रतिनिधित्व करती थी ।

कीव रूस : पूर्वी स्लाव जाति में छठी से नवीं शताब्दी तक वर्गों और राज्यों के विकास की कुछ खास विशेषतायें थी। चूंकि पूर्वी स्लावों के रहने के क्षेत्र रोमन साम्राज्य के अधीन नहीं पड़ते थे, उनका सामाजिक संगठन दास-स्वामी सम्बन्धों के सीधे प्रभाव से बच गया। स्लावों के बीच आदिम कबीले समुदाय का ह्रास ऐसे समय में प्रारम्भ हुआ जबकि ऐसे राज्य भी, जिनके साथ उनका थोड़ा-सा भी सम्बन्ध था, सामन्तवाद में परिवर्तित हो गये थे। इस तरह उन्होंने इतिहास के दास-स्वामी युग को लांघ लिया और एक नया ढांचा—सामन्तवाद—में प्रवेश किया। ९ वीं और १० वीं शताब्दी में बुनियादी सामन्ती वर्गों का जन्म हुआ; स्वतंत्र किसान सामन्ती भूस्वामियों के अधीन बनाये गये और उनके द्वारा निर्दयता से शोषित हुए ।

९ वीं शताब्दी में स्लावी कबीलों में से एक, पोलिया ने, जो रूस के नाम से प्रसिद्ध था, एक शक्तिशाली राज्य के उदय की नींव डाली जिसका केन्द्र कीव था। ९ वीं, १० वीं और ११ वीं शताब्दियों में पूर्वी स्लावों के बीच एक महान कबायली मैत्री स्थापित हुई जिसने ११ वीं और १२ वीं शताब्दी के प्रारंभ

में अपने राज्य का नाम कीव रूस रखा। प्राचीन रूस सब से बड़े और अधिक शक्तिशाली मध्यकालीन राज्यों में से एक था जिसकी अर्थव्यवस्था तेजी से विकसित हो रही थी। उसकी शक्ति किसानों और कारीगरों के निर्दय शोषण पर आधारित थी जिसके फलस्वरूप अक्सर जनविद्रोह और उपद्रव होते थे।

उस समय सामन्ती मालिक दोनों प्रकार के कर वसूल करते थे और किसान दोनों कर, सेवा में कर और जिंनस में कर, देने के लिए वाध्य किये जाते थे।

दस्तकारी विकसित हुई और धीरे-धीरे कृषि से पृथक् हो गयी। जो कारीगर ग्रामों में रह गये वे सामन्ती प्रभुओं के अधीन हो गये। अन्य लोग जो सामन्ती दुर्गों की चहारदीवारी के भीतर वस गये शहरी समुदाय वन गये। नगरों का विकास हुआ जो कारीगरी का केन्द्र बन गया। इस मामले में कीव रूस पश्चिमी यूरोप से वहुत आगे था; जहाँ शहरों का विकास वहुत बाद में विकसित सामन्तवाद के युग में हुआ। इतिवृत्त में दिखाया गया है कि ११ वीं शताब्दी के रूस में ८९ शहर थे, सबों की काफी उन्नत संस्कृति थी। उदाहरण के लिए, नोवगोरोड के पुरातत्त्व की खुदाई में प्राचीन रूसी लिपि में लिखे गये सैकड़ों भोजपत्र प्रकाश में आये हैं।

प्राचीन रूस के व्यापक व्यापारिक सम्बन्ध थे। रूसी व्यापारी पूरब और पश्चिम के देशों के साथ व्यापार करते थे और अक्सर अरव, बाइजान्टियम, बोहेमिया, पोलैण्ड, जर्मनी और स्काण्डिनेवियाई देशों के बाजारों में दिखाई पड़ते थे जहाँ वे महीन रोयें, मोम, शहद, धूना, रेशमी कपड़े, जवाहरात और शस्त्रों का व्यापार करते थे। वे अपने साथ विभिन्न विदेशी वस्तुएँ,

विलासिता के सामान, शराब, फल और विविध प्रकार के मसाले लाते थे।

११-१२ वीं शताब्दी तक प्राचीन रूसी राज्य की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा की व्यापक मान्यता हो चुकी थी। विदेशी व्यापार के साथ पश्चिमी यूरोप के देशों और बाइजेन्टियम के साथ राजनीतिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध विकसित हुए।

१२ वीं शताब्दी में कीव रूस के राजनीतिक और आर्थिक विकास में मंगोलों के आक्रमण से बाधा उपस्थित हुई; सामन्तों के बढ़ते हुए फूट और विकेन्द्रीकरण से विजय अपेक्षाकृत आसान हो गई।

एशिया में सामन्ती सम्बन्ध भिन्न मार्ग पर विकसित हुआ जो प्रत्येक राज्य के मामले में भिन्न-भिन्न रहा।

एशिया में सामन्तवाद का उदय : चीन में सामन्तवाद का उदय बहुत पहले तीसरी शताब्दी में देखा जा सकता है (कुछ तथ्यों से यह संकेत मिलता है कि उस से भी बहुत पहले)। यह प्राचीन हान साम्राज्य के पतन का समय था, जबकि देश नवीन चिन खानदान के अधीन एकताबद्ध था। चीन के सामन्ती विकास की एक खास विशेषता राज्य की स्थापना थी, न कि स्थल एवं जल पर व्यक्तिगत एकाधिपत्य। दास-स्वामी युग में राजकीय संपत्ति के उदय के समान यह कदम सार्वजनिक योजनाओं के केन्द्रीकरण तथा प्रतिरक्षा के सुदृढ़ बनाने से सम्बन्धित था। इसी के जमाने में महान दीवाल के प्रथम मीलों का निर्माण हुआ था।

चिन खानदान के प्रथम सम्राट सुमा-येन (२६५-२९०) के अधीन राज्य के द्वारा बँटवारे की व्यवस्था कानून के रूप

में लागू किया गया। इस कानून के अनुसार एक किसान को दी जानेवाली जमीन दो हिस्से में बँटी हुई रहती थी। जमीन के एक हिस्से की फसल किसान अपनी आवश्यकताओं में खर्च करता था। दूसरे हिस्से की फसल राज्य को सौंप दी जाती थी। सिंचाई की व्यवस्था दुरुस्त रखने, जमीन से पानी निकालने और प्रतिरक्षा निर्माण करने की जिम्मेदारी भी किसानों की होती थी। यह प्रारम्भिक ढंग का सेवा-कर था, लेकिन अनिवार्य सेवा जिससे जमीन्दारों को लाभ होता था और जो यूरोप में सामन्तवाद की खास विशेषता थी, चीन में शायद ही प्रचलित थी। सामन्ती प्रभुओं के पास जमीन नगण्य मात्रा में रहती थी और राजकीय जोतों को निजी संपत्ति में बदलने का उनका प्रयास असफल रहा।

चीन में विकसित होनेवाले सामन्ती सम्बन्धों ने जापान और कोरिया में सामन्ती व्यवस्था के विकास को प्रभावित किया। दोनों देशों ने इतिहास के दास-स्वामी युग को लांघ लिया और आदिम सामुदायिक व्यवस्था से सीधे सामन्तकाल में प्रवेश किया। जापान में सामन्तवादी सम्बन्धों का रूपीकरण ४थी शताब्दी में शुरू हुआ। चीन के प्रभाव में सामन्तवाद हिन्द चीन में ५वीं शताब्दी में प्रकट हुआ।

एक अजीब सामन्ती समाज, जिसमें अब तक आदिम दासता कायम थी, भारत में देख सकते थे, जहाँ कोई विदेशी प्रभाव नहीं था। उनकी पैतृक दासता आदिम कुल समुदाय के असंख्य अवशिष्टों के साथ-साथ रहती थी, यद्यपि प्रथम की प्रधानता थी।

भारत में सामन्तवाद का उदय ५वीं और ६ठी शताब्दी

[illegible] था । शहरों में कारीगर मुख्यत: दास-स्वामी कुलीनों की आवश्यकता की पूर्त्ति के लिए काम करते थे । व्यापार मुख्यत: बड़े शहरों के बीच में होता था ।

अरब की भूमि में जो राज्य उत्पन्न हुए वे देशों की एक तीसरी श्रेणी के थे जिनमें सामन्तवाद की ओर बढ़ने वाले मार्ग की अपनी खास विशेषता है । ईसा के पूर्व पूरे द्वितीय और प्रथम सहस्राब्दी में प्राचीन अरब दास-स्वामी राज्य बार बार टूटे और फिर नये सिरे से बने जिसका एकमात्र अपवाद हिम्यिरिटिक राजतंत्र था (वर्त्तमान यमन की भूमि पर स्थापित) जो ईसा पूर्व ११ वीं शताब्दी तक जीवित रहा । दास-स्वामी नगर-राज्यों की केवल एक छोटी संख्या (जैसे मक्का और मदीना) एक लम्बे अरसे तक कायम रही । दास-स्वामी राज्य का अरब राज्यों में कभी विकास नहीं हुआ, जहां सामन्तवाद ७वीं शताब्दी में प्रकट होने लगा । खानाबदोश कबीलों के बीच आदिम कुल समुदाय के ह्रास के आधार पर यह विकसित हुआ ।

एशिया के सभी देशों में सामन्तवाद का उदय दमनकारी शासन के खिलाफ जनता के साहसिक संघर्ष की स्थिति में हुआ ।

अफ्रीका में सामन्तवाद का उदय : उत्तरी अफीका और सहारा के दक्षिण के देशों में यद्यपि सामन्ती सम्बन्धों के विकास में यूरोप और एशिया की प्रक्रिया से बहुत कुछ समानता है तो भी उसकी खास विशेषता थी ।

घानाई राज्य, जो सबसे प्राचीन सामन्ती राज्यों में से एक

था, नाइजर और सेनेगाल के बीच ८वीं शताब्दी के इर्दगिर्द प्रकट हुआ। इस क्षेत्र में मण्डा भाषा समूह के लोग वसे हुए थे। घानाई समाज के सामाजिक-आर्थिक ढांचे की पूरी छान-वीन अब तक नहीं हुई है। हम जानते हैं कि राज्य के प्रमुख सामन्ती शासक थे और आठवीं शताब्दी के अन्त में राज सत्ता सिसे ताऊंकारा खानदान के हाथ में केन्द्रित हो गयी। शाही सत्ता का उत्तराधिकार मातृकुल की सत्ता के आधार पर होना (मामा से भानजा—भूतपूर्व शासक की बहन का पुत्र) इस वात का प्रमाण है कि आदिम सामुदायिक व्यवस्था के कुछ अवशेष वचे हुए थे। पड़ोसी इलाकों में फौज भेज कर नये गुलाम पकड़े जाते थे। घानाई शासक वड़े पैमाने पर यह करते थे।

घरेलू व्यापार की अपेक्षा विदेशी व्यापार की प्रधानता रहने से श्रम का सामाजिक विभाजन नगण्य रहा। व्यापार मुख्यत: उत्तर आफ्रीकी देशों के साथ होता था। नमक और सोना निर्यात के मुख्य सामान थे।

जेन्ने और अन्य घानाई शहर वड़े व्यापारिक केन्द्र वन गये। अफ्रीका के इस हिस्से में नगरों के विकास से संस्कृति का प्रसार हुआ, खास कर विद्यालयों की स्थापना हुई।

२. सामन्तवाद के विकास का युग

कारीगरी और व्यापार का विकास : सामन्तवाद के विकास की एक खास विशेषता शहरों का विस्तार—कारीगरी और व्यापार के केन्द्र के रूप में और पण्यों के उत्पादन के केन्द्र के रूप में—होना था। कारीगरी का कृषि से पृथक होना कुल समुदाय में शुरू हुआ था और पूरे दास-स्वामी व्यवस्था में जारी रहा। यह प्रक्रिया दास-स्वामी राज्य के आर्थिक ह्रास के

साथ रुक गयी जिसके फलस्वरूप उसका पतन हो गया। दास-

स्वामी व्यवस्था के अन्त के साथ शहरों का व्यापार और कारीगरी के केन्द्र के रूप में काम करना समाप्त हो गया। एशिया और उत्तरी अफ्रीका के कुछ शहर इसके अपवाद थे।

सामन्तवाद ने उत्पादक शक्तियों के विकास की नयी संभावनायें पैदा कीं जिसने कृषि और शहरी कारीगरी के बीच श्रम के सामाजिक विभाजन को और विकसित किया। यह प्रक्रिया लम्बी और उलझी हुई थी और पश्चिमी यूरोप और खासकर फ्रांस में उसका स्पष्ट तौर से पालन होता था। फ्रांसीसी किसान अपने मालिकों को कृषि उत्पादन ही भेंट के रूप में नहीं देते थे बल्कि हस्तकला के उत्पादन भी देते थे––मुख्यतः, पट्टू और वस्त्र।

जैसे जैसे कृषि का और विकास हुआ—लोहे के हल का प्रसार और खेती की दो और तीन क्षेत्रीय प्रथा फैली, बाजार, बागवानी और अंगूर की खेती का विकास हुआ,—किसान परिवार कारीगरी में अधिक समय देने लगे, जब कि उसके कुछ सदस्य खास उद्योग में विशेष योग्यता प्राप्त करने लगे।

किसानों का एक ऐसा तबका पैदा हुआ जो अपना पूरा नजराना पण्यों में देते थे। अपने अतिरिक्त पण्यों को अपने समुदाय के अन्य किसानों को बेचकर वे कुछ पैसे इकट्ठा कर पाये थे। इस तरह खेती किसानों के जीवन-निर्वाह का एक मात्र साधन नहीं रही, यद्यपि कानूनी तौर से वह उसी वर्ग में रही।

कारीगरी के विकास में कारीगरों और बाजार के बीच सम्बन्ध स्थापित होना एक नयी मंजिल थी। जब सामन्तवाद

प्रारंभिक अवस्था में ही था तब व्यापार करनेवाले किसानों को उनके मालिक छुट्टी के दिनों में अपने सामान बड़े दुर्गों और मठों के पास लगनेवाले मेलों में बेचने देते थे। लेकिन अपने अस्थायी विशेषता के कारण इन व्यापारिक प्रतिष्ठानों का कोई सामाजिक महत्त्व नहीं था।

प्रारंभ में कारीगरी का कृषि से पृथक होना सामन्ती रियासतों तक ही सीमित था। विशिष्ट योग्यता के विकास के साथ सामानों की बिक्री अधिक तेजी से होने लगी। कारीगर अपनी पैदावार का एक हिस्सा बाजार के लिए पैदा करने लगे; इस तरह उन्हें पण्य में बदल लिया और खुद एक पण्य उत्पादक बन गये।

यह बिल्कुल स्वाभाविक था कि बहुत कुशल कारीगरों को सामानों के लिए खरीददार अपने ग्राम में नहीं मिल सकता था। इसके अलावा सामन्ती शोषण उसके मुख्य पेशे में बहुत बड़ा बाधक बन रहा था। इन दो बातों ने कारीगरों को (कानूनी तौर से जो अब तक किसान थे) प्रेरित किया कि वे अपने मालिक को छोड़ें और ऐसी जगह पर जायें जो उत्पीड़न से मुक्त हो और जहाँ वे अपने पण्यों के लिए बाजार पा सकें।

कुछ किसान कारीगर भाग गये और अन्य लोगों ने अपने सामन्ती मालिकों के साथ समझौता कर लिया। चूंकि सामन्तों को मुद्रा की आवश्यकता थी अतः उन्होंने सेवामुक्त-कर चालू करना लाभदायक पाया। सबसे पहले सामन्त कारीगरों को थोड़े समय के लिए ही अपनी रियासत छोड़ने देते थे, उदाहरण के तौर पर, जाड़े के मन्द दिनों में, जब कि हाट लगते थे। बाद में उनकी छुट्टी की अवधि बढ़ायी गयी।

वे किसान भी जिनका मुख्य पेशा खेती था और जो

दस्तकारी की वस्तुएँ अपने निजी उपयोग के लिए बनाते थे, सामन्ती रियासत छोड़ने लगे। कारीगरों का कृषि से अलग होना अब किसी खास रियासत तक ही सीमित नहीं रहा, वल्कि पूरे सामन्ती समाज में फैल गया। साथ ही श्रम के इस सामाजिक विभाजन से शहर और ग्रामों के वीच का विरोध शुरू होने लगा।

अपने ग्रामों को छोड़ने के वाद किसानों ने ऐसी जगह की तलाश की जहाँ वे अपने पण्यों को आसानी से वेच सकें, कच्चे माल आसानी से प्राप्त कर सकें और सुरक्षित रह सकें। वे अक्सर राजा, सामन्त या पुरोहित के महल के पास बसते थे या प्रशासन के केन्द्र के पास जहाँ ये आवश्यकतायें पूरी हो सकती थीं। भागे हुए अर्धगुलाम भी बड़े मठों या गिरजों के पास बसना पसन्द करते थे जिनकी किलेबन्दी महलों के ही समान होती थी।

कभी कभी अपने ग्रामों को छोड़े हुए किसान नदी या व्यापार मार्ग के चौमुहाने पर या काफिलों के ठहरने की जगह बसते थे। यहाँ दूर दूर के व्यापारी अपने पण्यों का विनिमय करते थे या स्थानीय कारीगरों से सामान खरीदते थे। विविध प्रकार के काम—जैसे, चीजों को चढ़ाना, नाव खेना आदि—करने के लिए किसानों को भाड़े पर ठीक करते थे।

इन किसानों ने (वास्तव में वे अर्धगुलाम थे) धीरे धीरे सामन्ती उत्पीड़न से अपने को मुक्त किया, क्योंकि इस खास मामले में राजा और उपराजा मजदूरों को आकर्षित करना चाहते थे।

जब किसान आवश्यक रकम बचा सके तो उन्होंने अपनी आजादी खरीद ली। कुछ मामले में उन्होंने केवल सेवारहित कर देना बन्द कर दिया और अपने ग्रामों में नहीं लौटे और सामन्ती सरदारों के वश की बात नहीं थी कि उन्हें लौटने के लिए बाध्य करें। इस तरह अर्धगुलामों में से कुछ स्वतन्त्र नागरिक बन गये।

मध्यकालीन शहर में उत्पादन का आधार करीगरी था। किसानों के समान कारीगर एक छोटा उत्पादक था, वह उत्पादन के साधनों का खुद मालिक था, वह अपनी घर-गृहस्थी का स्वयं प्रबन्ध करता था और उसकी एकमात्र दिलचस्पी थी जीवन निर्वाह का साधन हासिल करना। उसको मुनाफे में दिलचस्पी नहीं थी।

मध्ययुग में सभी कारीगर अपने पेशों के अनुसार कारीगर संघों में संगठित थे। ये कारीगर-संघ उत्पादन के आकार, इस्तेमाल किये जाने वाले कच्चे माल के गुण आदि के सख्त नियंत्रण की व्यवस्था पर आधारित थे। वे उत्पादन की मात्रा भी तय करते थे। आम तौर से हर कारीगर दो मजदूर और दो सीखनेवाले ही रख सकता था।

कारीगर-संघ मजदूरों को दी जानेवाली मजदूरी और पैदा की गयी वस्तुओं की कीमत भी तय करता था। चीजों की बिक्री के बारे में भी सख्त नियम थे।

एक तरफ इटली और दक्षिणी फ्रांस तथा दूसरी तरफ बाइजेन्टियम और लेवान्ट (भूमध्य सागर के पूर्वी तट के देश) के साथ व्यापारिक सम्बन्धों से इटली में वेनीस, जेनेवा, पिसा और नेपल्स; फ्रांस में मार्सेलीज, अरल्स, नारबोने, मोन्टपे-

लियर और अन्य अनेक शहरों का विकास हुआ। इटली और फ्रांस में आठवीं शताब्दी में ही शहरों का उदय व्यापार और कारीगरी के केन्द्रों के रूप में हुआ था। जर्मनी और इंगलैंड में यह प्रक्रिया दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दी में हुई।

यह पहले ही उल्लेख किया गया है कि १०वीं और ११वीं शताब्दी में कीव एक बड़ा रूसी शहर था। नोवगोरोड, जो कारीगरी और व्यापार की समृद्धि का एक दूसरा महत्त्वपूर्ण केन्द्र था, को भी लोग व्यापक तौर से जानते थे। चेरभिगोव, स्मोलेनस्क और पालेस्कि प्राचीन रूस के अन्य महत्त्वपूर्ण आर्थिक केन्द्र थे।

वारहवीं शताब्दी में मास्को एक शहर के रूप में विकसित हुआ। १२वीं शताब्दी के मध्य से मास्को का बहुत तेजी से विकास हुआ और १३ वीं शताब्दी में वह मास्को प्रदेश की राजधानी वन चुका था।

श्रम के और विभाजन से एक सामाजिक तवके का जन्म हुआ जो उत्पादन के काम में भाग नहीं लेता था बल्कि पूरे तौर से पैदावार का विनिमय करता था—वे व्यापारी थे। वे उत्पादकों से चीजें खरीदते और बाजारों में बिक्री करते थे। धीरे-धीरे एक और सामाजिक तवके का उदय हुआ—शहरी गरीबों का, जिनमें कारीगर, छात्र, बरबाद कारीगर, दिवालिया आदि थे। ये शहरी उच्च तवके के खिलाफ थे जिनमें व्यापारी, महाजन, धनी कारीगर और सामन्ती शहरू शामिल थे।

नये राज्य के रूप : सामन्ती राजतंत्रका उदय : बदली हुई सामाजिक परिस्थिति ने, जो मुद्रा और पण्य संबंधों से पैदा हुई

थी, शासन करनेवाले सामन्तवर्ग को राजनीतिक सत्ता का रूप

परिवर्त्तित करने के लिए वाध्य किया ।

सामन्ती राज में एक नया पहलू जोड़ा गया जिसकी प्रवृत्ति आर्थिक केन्द्रीयकरण के आधार पर व्यापक क्षेत्रों का एकीकरण करने की थी । राजनीतिक एकीकरण और केन्द्रीभूत राज्य का गठन एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना थी जो विकसित सामन्तवादी युग में अन्तर्निहित थी ।

इस प्रक्रिया के साथ राज्य के राजनीतिक ढांचे में परिवर्त्तन हुआ। अन्य देशों की अपेक्षा फ्रांस में, २० वीं शताब्दी तक, वर्ग संघर्ष ने अधिक प्रभावशाली फल दिखाए जबकि राजनीतिक ढांचे अन्य जगहों से अधिक भिन्न थे ।

फ्रांस में केन्द्रीकरण के साथ शाही सत्ता १२ वीं शताब्दी से लेकर १५वीं शताब्दी के अन्त तक धीरे-धीरे सुदृढ़ हुई । फ्रांसीसी राजाओंने अपनी सत्ता देश के धनी सामन्ती सरदारों पर कायम की, जिन्हें उपराज्यों से, जो अपने अधिपतियों के दमन से पीड़ित थे, व्यापक समर्थन मिला ।

फ्रांस के राजनीतिक एकीकरण और राज की सत्ता को सुदृढ़ बनाने में नगर और उसकी आबादी ने बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की । कारीगर और व्यापारी व्यापारके मार्ग की सुरक्षा तथा देश के भीतर सुदृढ़ व्यापारिक सम्बन्ध कायम करना चाहते थे; उन सरदारों के खिलाफ, जो झगड़े, युद्ध और लूट द्वारा स्थापित व्यवस्था का उल्लंघन करते थे, राजा की उठती हुई सत्ता का समर्थन करने के लिए वे तैयार थे ।

सामन्ती शासक-वर्ग के हितों का प्रतिनिधित्व करते हुए, शहरों में विकसित होने वाले व्यापार और दस्तकारी के उद्योग

का समर्थन करना राजा ने लाभदायक समझा और इस तरह उसने इतिहास के उस काल में प्रगतिशील भूमिका अदा की।

यद्यपि केन्द्रीय सत्ता मजबूत हुई, तो भी, फ्रांसीसी राजा सामन्त परिषद का अधिवेशन बुलाते थे जो पुराने जमाने का अवशिष्ट थी। किसी महत्त्वपूर्ण विषय के निबटारे के लिए जब सामन्ती सरदारों और गिरिजा के पुरोहितों की स्वीकृति लेने की जरूरत पड़ती थी तब वे इस सदन की बैठक बुलाते थे।

१२ वीं शताब्दी के बाद से बड़े शहरों के खुशहाल वर्गों के प्रतिनिधि परिषद में आमंत्रित किए जाते थे। १४ वीं शताब्दी के प्रारंभ से (फिलिप चतुर्थ का शासन काल) इन परिषदों की बैठकें नियमित होने लगीं और देश के उत्तरी प्रान्तों में कायम की गयी प्रान्तीय विधान सभा से पृथक दिखाने के लिए उन्हें "आम सभा" कहा जाता था।

पुरोहितों, सामन्तों और नगरवासियों के प्रतिनिधि राजाओं द्वारा उठाये गये कदमों का समर्थन, विभिन्न सहूलियतों के बदले में ही, करते थे। इस तरह देश के प्रशासन को वे सीधे प्रभावित करते थे।

सामाजिक रियासतों का प्रतिनिधित्व यूरोप के अन्य देशों में भी प्रकट हुए। उदाहरण के लिए, इंगलैंड में पार्लियामेंट सामन्ती राज्य के विकास में एक नई मंजिल के रूप में विकसित हुई। नया राजतंत्र सामन्ती प्रभुता का राजनीतिक स्वरूप था। सामन्तवादी समाज में उन उत्पादक शक्तियों और उत्पादन-सम्बन्धों के विकास के नये स्तर के वह अनुकूल था, जिनका उदय शहरों का विकास तथा दस्तकारी और व्यापार की वृद्धि के साथ हुआ। सामन्ती राज्य का यह नया स्वरूप, जनता

के शोषण में वृद्धि करने के लिए मजदूर वर्ग की भावना का प्रतिविम्व था।

रूसी केन्द्रित राज्य : रूसी केन्द्रित राज्य का निर्माण १५वीं शताब्दी के अन्त में हुआ था। मंगोल-तातार शासन को, जो १३ वीं शताब्दी तक रूस में उत्पादक शक्तियों के विकास में वाधक था, उखाड़ फेंकने के वाद रूसी राज्य का एकीकरण पूर्ण हुआ। रूसी राज्य का केन्द्र मास्को बना। सामन्ती अनैक्य के खतम करने से देश की आर्थिक और सांस्कृतिक उन्नति हुई।

एकीकरण के बाद रूसी राज्य एक सामन्तवादी राजतंत्र रहा। बड़ा राजकुमार-जागीरदार उसका प्रधान होता था। धनी जमींदारों की 'बोयर परिषद' (राजकुमार के परामर्शदाता) धीरे-धीरे स्थायी संस्था वन गयी। शासन संस्थाओं का गठन किया गया जिसने १६ वीं शताब्दी में स्थायी मंत्रालयों का रूप धारण किया। सामन्त जमीन्दरों के विशेषाधिकार घटाये गये। राजकुमार के प्रतिनिधियों को सौंपे गये महत्त्वपूर्ण राजकीय मामलों पर बहस करने तथा हल करने में उन्हें अब हिस्सा नहीं लेने दिया जाता था।

१६ वीं शताब्दी के मध्य में समाज के उच्च तबके का प्रतिनिधित्व करनेवाला एक राजतंत्र विकसित होने लगा। १५४९ में एक राष्ट्रीय सभा जेमस्की सोबोर के नाम से गठित की गयी। इसके सदस्य पहले बोयरों (रूसी कुलीनों का वर्ग), ऊँचे पुरोहितों और मास्को के उच्च कुल के होते थे। १५६६ में जब उसका अधिवेशन बुलाया गया तो व्यापारियों और कारीगरों के प्रतिनिधि भी शरीक किये गये।

रूसी राज्य, १६ वीं शताब्दी के द्वितीयार्द्ध में इवान चतुर्थ, जिनका उपनाम "भयंकर" था (१५३०-१५८४), के शासन-काल में खास तौर से शक्तिशाली वना। गद्दी पर बैंठते ही इवान चतुर्थ ने "संपूर्ण रूस का जार" की उपाधि धारण की। उनके शासन के अन्त तक रूसी राज्य पश्चिम में वाल्टिक सागर से साइबेरिया में येनिसेई नदी तक और आरटिक समुद्र से लेकर काकेशियाई पहाड़ी और कैस्पियन सागर तक फैल गया था।

एशिया में सामन्तवाद का विकास : चीन में सामन्तवाद का विकास बहुत पहले ८वीं शताब्दी में तांग साम्राज्य के युग में हुआ था। उस काल की उल्लेखनीय विशेषता एक प्रकार की सामन्ती भूमि-व्यवस्था से दूसरी व्यवस्था में परिवर्त्तन था। राज्य द्वारा जमीन बन्दोबस्त की व्यवस्था की जगह बड़े सामन्ती रियासतों ने ली। पहले धनी भूस्वामियों ने और तब मझले एवं छोटे सामन्ती सरदारों ने अधिक-से-अधिक जमीन हथिया ली और इस तरह किसानों को अपनी जमीन से वंचित कर दिया। प्रमुख प्राकृतिक अर्थतंत्र, जो बन्दोबस्ती व्यवस्था की खास विशेषता थी, और कृषि एवं दस्तकारी का पारस्परिक सम्बन्ध कमजोर हो गया। पण्यों का उत्पादन विकसित हुआ और पुराने शहर दस्तकारी और व्यापार के केन्द्र बन गये। सम्पत्ति के आधार पर किसानों के श्रेणी-विभाजन का असर ग्राम्य समुदाय पर पड़ा। ८वीं शताब्दी के अन्त तक सामन्ती सरदारों द्वारा कब्जा की गयी जमीन सरकारी तौर से उनकी सम्पत्ति मान ली गयी।

चीन में बौद्धमठ सबसे धनी भूस्वामी था। ९वीं शताब्दी के मध्य में बौद्ध विहारों के पास ६ करोड़ हेक्टर जमीन थी।

नये प्रकार के सामन्ती स्वामित्व में संक्रमण से देश में राजनीतिक अनैक्य पैदा हुआ, जो १०वीं शताब्दी के प्रारंभ में, ताँग साम्राज्य के पतन के वाद, वहुत तीव्र हुआ। फिर भी, चीनी राज्य-व्यवस्था में केन्द्रीयकरण के तत्त्व कायम रहे जिससे वह उसी जमाने की यूरोपीय राजनीतिक एकता से अधिक मजबूत एकता कायम रख सका। यह बहुत कुछ उन तत्त्वों के कारण हुआ जो उस युग में भी उतने ही महत्त्वपूर्ण थे जितना दासता के युग में—वाँध, सिंचाई व्यवस्था आदि, सम्पूर्ण व्यवस्था की मरम्मत एवं सुधार-जैसे सार्वजनिक योजनाओं की आवश्यकता। उस तरह की योजनायें स्थानीय आधार पर नहीं वन सकतीं।

भारत में, चीन के ही समान, सामन्तवाद का विकास तुलनात्मक दृष्टि से बहुत पहले हुआ था (७वीं शताब्दी में)। सामन्त भूमि दो भागों में वँटी हुई थी। एक हिस्सा सामन्ती सरदारों के कब्जे में था जो महाराजाओं की सैनिक सेवा के उपलक्ष्य में प्राप्त था। यह जमीनें, आमतौर से पैतृक वन गयीं। दूसरा हिस्सा सामन्ती सरदारों के कब्जे में बिना किसी शर्त्त या सीमा के था। महाराज खुद व्यापक जमीन के स्वामी होते थे।

महाराजाओं द्वारा प्रदत्त जमीन अकसर ग्राम समुदाय हथिया लेता था और उसे खुद अकसर निजी संपत्ति बना लेता था।

भारतीय ग्रामीण समुदाय की गति अवरुद्ध होना भी सामन्ती शोषण के तीव्र होने का एक कारण था।

भारतीय समाज की खास विशेषता सामाजिक समूह या जातियों में विभाजित होना भी थी। यह दास प्रथा के युग में ही

बनायी गयी थी और आज तक उन्हें सुरक्षित रखा गया है।

अपने मूल्य या धर्म के अनुसार जातियों ने विभिन्न समूहों का एकीकरण किया जिससे जाति--व्यवस्था एक तरह का सामाजिक श्रम विभाजन बन गया। इस व्यवस्था ने हमेशा शोषक वर्ग के हितों की रक्षा की है और आज भी कर रही है।

अरब में जो सामन्ती राज्य-व्यवस्था विकसित हुई वह इस माने में पृथक थी कि उसमें राजनीतिक एकीकरण का केन्द्र-विन्दु धार्मिक समुदाय था। इस्लाम का प्रचलन मुहम्मद द्वारा हुआ जो क्युरैश कबीले के हैशमी परिवार के थे (५३७–६३२)।

अफ्रीकी महादेश के राज्य :—इस काल में अफ्रीकी महादेश में, सहारा मरुभूमि के दक्षिण में, सामन्ती राज्यों का विकास देखा गया।

१३वीं शताब्दी में सोसो कबीलों के हमले से घाना राज्य की एक जमाने की प्रधानता खतम हो गयी। उसका स्थान धीरे-धीरे माली ने लिया, जहाँ मलिके लोग रहते थे। छोटा-सा युवराज-शासित माली १७वीं शताब्दी के पहले नइजर और बाको के बीच में स्थित था। कृषि और खासकर कपास की खेती तथा सोने की खान, दस्तकारी और व्यापार माली की वढ़ती हुई शक्ति के कारण थे। १२४० ई० में एक माली शासक सुन्दियाथा ने (मरी जट्टा) घाना की फौज को हराया और घाना की राजधानी को ध्वस्त कर दिया।

१३वीं शताब्दी के अन्त में माली की राजधानी, जो माली ही कही जाती थी, एक महत्त्वपूर्ण वाणिज्य केन्द्र बन गयी। दक्षिणी भूमध्य सागर के देशों के साथ व्यापारिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित किये गये।

१७वीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध में सोंघई, फुल्बे और वमवरा

कबीलों के द्वेषपूर्ण कार्रवाइयों से माली राज्य कमजोर हुआ और उससे उसका पतन हुआ। उस जमाने में पश्चिमी सूडान के पूर्वी हिस्से में एक दूसरे सामन्ती राज्य का उदय हुआ। इसकी स्थापना सोंघई कबीलों ने की।

सोंघई के प्रथम राज्य की स्थापना १४वीं और १५वीं शताब्दी में हुई थी। १६वीं शताब्दी में इसकी प्रभुता ऊपरी नइजेर से लेकर बुस्सा जलप्रपात तक और उत्तर में सहारा अंचल से लेकर दक्षिण में बाबो और मोस्ती देशों तक फैल गयी। सोंघई में अन्य सूडानी राज्यों के समान सामाजिक उत्पादन में गुलाम की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। गुलामों को अकसर जमीन दी जाती थी और अर्ध गुलामों के ही समान जिनिस में लगान देने के लिए वे वाध्य थे। उनकी संतानों ने, जो दायगर्नी कही जाती थी यद्यपि अब भी गुलाम मानी जाती थीं, दूसरी और तीसरी पीढ़ी में कुछ अधिकार हासिल किया और अब वे बेचे नहीं जा सकते थे। अर्धगुलामों के साथ गुलामों और दायगर्नी ने अकसर अपने उत्पीड़कों के खिलाफ विद्रोह किया।

१६वीं शताब्दी के प्रारंभ में सोंघई शासकों की मोरक्को के सुलतानों के साथ प्रथम मुठभेड़ दिखाई पड़ी जो पूरी शताब्दी में चलती रही। यद्यपि अंतिम लड़ाई में सोंघई शासकों की जीत हुई तो भी राज्य इतना कमजोर हो गया था कि १७वीं शताब्दी के अंत तक उसका पतन हो गया।

१७वीं शताब्दी बेनीन राज्य, के लिए जो वर्त्तमान दक्षिण नाइजेरिया का हिस्सा था, समृद्धि का जमानाथा। वहां

योरुबा और एडो जातियों द्वारा निर्मित संस्कृति का विकास सदियों से हो रहा था।

दूसरा बड़ा सामन्ती राज्य कांगो था। १५वीं से १८ वीं शताब्दी तक, जबकि कांगो राज्य अपने प्रताप के शिखर पर था, उसका क्षेत्र पूरब में क्वांगो नदी, दक्षिण में क्वाजा नदी, पश्चिम में अतलांतिक महासागर तथा कांगो नदी से ५००-६०० कीलोमीटर उत्तर तक फैला हुआ था। सभी इलाकों में वाकांगो, वसुण्डी, मड़योंवे आदि कबीले बसते थे। राज्य की सरकारी भाषा किशिकांगो थी।

सामाजिक उत्पादन मुख्यत: गुलाम-श्रम पर निर्भर था। गुलाम सबसे कठिन काम करते थे। विभिन्न दस्तकारियों का विकास हुआ और व्यापार का विस्तार हुआ। पड़ोसी अंगोला और मोनोमोटापा (कांगो के दक्षिण और दक्षिण-पूर्व में) राज्यों में भी उसी तरह का सामाजिक सम्बन्ध प्रचलित था।

सामन्ती समाज के सिद्धान्त और संस्कृति:धर्म, मठ और गिरजा: श्रमजीवी जनता पर सामन्त वर्ग की प्रभुता मजबूत बनाने में आर्थिक शोषण और राजनीतिक उत्पीड़न ही एकमात्र साधन नहीं था। सिद्धान्त का असरदार इस्तेमाल होता था। सामन्तवादी सिद्धान्त में धर्म और गिरिजों की निर्णायक भूमिका रही। गिरजों ने इस दुनिया की मुसीबतों के हरजाने के रूप में स्वर्गीय सुख पाने का लोभ दिया। उसकी नीति श्रमजीवी जनता में आत्मसमर्पण की भावना पैदा करने और उन्हें सामन्ती कुलीनों के साथ किये जानेवाले संघर्ष से विचलित करने की थी। उस जमाने में आध्यात्मिक जीवन के सभी पहलुओं पर धर्म का जोरदार असर था। वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्था को अपने

उन्नत अधिकार से पवित्रता प्रदान करना गिरजों की भूमिका हो गई।

गिरजा और धर्म के इस जोरदार असर से मध्यकालीन समाज की पूरी आध्यात्मिक संस्कृति वहुत प्रभावित थी।

सामन्ती समाज में धर्म की भूमिका का एक ज्वलन्त उदाहरण रोमन कैथोलिकवाद है। रोमन साम्राज्य के जमाने में ईसाईधर्म दास-स्वामियों का सरकारी धर्म बन गया था। मध्यकाल में सामन्त सरदारों के शासक-वर्ग ने ईसाई धर्म को अपने सिद्धान्त की आधारशिला बनाया। ११ वीं शताब्दी में, ईसाई गिरजों के पूर्व और पश्चिम के रूप में स्थाई फूट के बाद, रोमन कैथोलिक या पश्चिमी गिरजा पश्चिमी यूरोप की सामंतवादी व्यवस्था का सैद्धान्तिक स्तंभ बन गया।

कैथोलिक गिरजे के ढांचे में भी आम सामन्ती व्यवस्था के अनुरूप पोप की आज्ञा का पालन होता था जिस में पोप और रोम का संत उसके प्रमुख होते थे और उनके नीचे कार्डिनल, विशप, आदि से लेकर पादरी, उपपादरी आदि होते थे जो पोप से सीधा सम्पर्क रखते थे।

खुद कैथोलिक गिरजा एक प्रभावशाली सामन्ती भूस्वामी होता था। यूरोप में सबसे अधिक सम्पत्ति दक्षिण नीदरलैण्डस की संत ट्रोण्ड एवी और पैरिस के नोट्रेडम कैथेड्रल के पास थी। उनके पास आवाद जमीन, अंगूर के बागान, जंगल और चरागाह होते थे जहां असंख्य झुण्ड के झुण्ड घोड़े, गाय, बकरी, भेड़ और सुअर पाले जाते थे। किसानों की पैदावार का दसवां हिस्सा वराबर गिरजे को दिया जाता था।

गिरजे की सम्पत्ति का स्रोत किसानों और कारीगरों का निर्मम शोषण था।

मध्ययुग के प्रारंभ में और विकसित सामन्तवाद के काल में पश्चिमी यूरोप की संस्कृति में गिरजे के प्रभाव का स्पष्ट चिह्न दिखाई पड़ता है।

प्राचीन दर्शन, गणित और प्राकृतिक विज्ञान की जगह कैथोलिक अध्यात्मवाद ने ले ली। साहित्य और इतिहास क्रमश: भित्तिचित्र और गिरजागाथा तक सीमित रहा।

फिर भी यह समझना गलत होगा कि गिरजे का आध्यात्मिक एकाधिपत्य शान्तिमय तरीके से स्थापित हुआ था। गिरजे ने उस समय के सभी स्वतन्त्र विचारकों और आम जनता के खिलाफ भयानक संघर्ष के फलस्वरूप समाज के आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश किया था। कैथोलिक गिरजे ने (अन्यों के समान) पुरोहित-विरोधी विचारों और पौराणिक कथाओं में विश्वास रखने वालों को सताया।

इतिहास के सामन्ती युग में इस्लाम एक दूसरा व्यापक धर्म था। इस्लामी धार्मिक समुदाय ने अरब में सामन्ती राज्य के विकास की नींव डाली। अरबों द्वारा जीते गये भूभागों के सामन्ती समाज के आध्यात्मिक जीवन पर इस्लाम ने शासन करना शुरू किया और बाद में बहुत अन्य एशियाई और अफ्रीकी देशों में प्रवेश किया तथा उससे कुछ कम मात्रा में यूरोप में भी। उसने उत्पीड़न और शोषण की प्रबल व्यवस्था को पवित्रता प्रदान की।

कुरान में बताया गया है कि सम्पत्ति की असमानता अल्लाह की मर्जी से हमेशा के लिए स्थापित व्यवस्था है। ईसाई

धर्म के ही समान इस्लाम धर्म ने भी, गरीबों को, शासक वर्ग के

उत्पीड़न से दैनिक जीवन में जो कष्ट उठाना पड़ता है उससे सान्त्वना के रूप में, परलोक में सुखी जीवन का वचन दिया।

अपने व्यापक प्रभाव के कारण बौद्ध धर्म की गिनती दुनिया के अधिक प्रमुख धर्मों में हो सकती है। अपने पौराणिक प्रवर्त्तक के नाम से, इसका प्रचलन सबसे पहले प्राचीन भारत में देखा गया जहाँ वह ब्राह्मणवाद के मुख्य सिद्धांतों पर आधारित था। दास-स्वामी वर्ग का वह राजकीय धर्म बन गया।

सामन्तवाद के उदय के साथ बौद्धमत की जगह हिन्दू धर्म ने ली, लेकिन उसी समय उसका विकास पड़ोसी देशों में हुआ। चीन में बौद्धमत का प्रथम अनुष्ठान ई०पू० पहली शताब्दी में हुआ और ४थी और ७वीं शताब्दी के बीच विशेष तौर से शक्तिशाली हुआ। बाद में कनफ्यूशियसवाद ने उसकी जगह ली, लेकिन कुछ हद तक वह देश में कायम रहा। वह कोरिया, जापान, थाईलैण्ड, बर्मा, प्राचीन कम्बोडिया, और हिन्दचीन के अन्य देशों में फैलता रहा और लंका और नेपाल में भी प्रवेश किया।

बौद्ध धर्म के अनुसार सभी दृश्य पदार्थ रहस्यमयी आध्यात्मिक भावना की मिथ्या अभिव्यक्ति है जिसका अस्तित्व पूर्ण निर्वाण में है। यह सिद्धान्त, अन्य धर्मों में एक देवता के साकार रूप की जो कल्पना है उससे मिलता-जुलता है। जिन्दगी बुराई और दुःखों की अभिव्यक्ति है। मुक्ति धीरे-धीरे निर्वाण प्राप्त करने से होती है जो वाह्य सम्बधों को विस्मृत करा देता

है। बाद में बौद्ध शिक्षा के स्थान की पूर्त्ति स्वर्ग और नरक

की कल्पना से की गयी जिससे यह आम लोगों के लिए अधिक ग्राह्य बन गया और इस तरह उसने सामन्त-वर्ग के राजकीय धर्म, जिसका काम सामाजिक असमानता को उचित ठहराना था, की भूमिका को मजबूत किया।

सामन्तवाद-विरोधी सिद्धान्त का उदय, नास्तिकवाद : आस्तिकवादी और धार्मिक विचारों का प्रावल्य (यूरोप में ईसाई धर्म, एशिया और अफ्रीका में इस्लाम और बौद्ध धर्म) परस्पर विरोधी, प्रतिद्वन्द्वी विचारधारा के अस्तित्व को रोक नहीं सका।

सख्त उत्पीड़न के बावजूद सामन्ती समाज के प्रगतिशील तत्त्वों ने भौतिकवादी आदर्श और विचारों का प्रचलन करने में भरसक काम किया। इस तरह सामन्तवादी युग में भी, पहले के ऐतिहासिक कालों के समान, भयंकर सैद्धान्तिक संघर्ष देखा गया।

पश्चिमी यूरोप के कैथोलिक सिद्धान्तिक थोमस अक्विनस और अन्य लोगों ने प्राचीन दुनिया के कुछ आस्तिकवादी दार्शनिकों के आदर्शों को अपनाया और अरस्तू (अरिस्टाटेल) के सिद्धान्तों को मिथ्या बता कर, मध्ययुग के धार्मिक आस्तिक विश्वासों का प्रतिपादन किया। उसी जमाने में अरब के दार्शनिकों ने प्राचीन समय के भौतिकवादियों से विरासत के रूप में प्राप्त विचारों का समर्थन किया। अविसेन्ना और अवेरोएस अपने जमाने के सबसे प्रगतिशील भौतिकवादी दार्शनिक थे। अवेरोएस के विचार डेमोक्रिट्स के विचारों के बहुत कुछ समान थे। उन्होंने वस्तु को प्रत्यक्ष वास्तविकता माना और अणु को

वस्तु का रूप माना । उन्होंने व्यक्ति की "मरणशील आत्मा" के समानान्तर में सार्वभौम विवेक के अस्तित्व को स्वीकार किया; जिनका एकीकरण बोध के क्षण में होता था । सामाजिक हैसियत की परवाह किये बिना लोगों की बौद्धिक समानता मानने वाला उनका जनतान्त्रिक विचार उनकी शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण पहलू था ।

अबरोएस के विचारों को प्रगतिशील पश्चिमी यूरोपीय विचारकों ने ग्रहण किया और उस जमाने में यूरोप में प्रचलित सामाजिक-आर्थिक परिस्थिति और भौतिकवादी परम्परा में व्यवहृत किया । सभी प्रगतिशील तत्त्वों के हाथ में भौतिकवादी विचार सामन्तवाद-विरोधी वर्ग-संघर्ष में मजबूत सैद्धान्तिक शस्त्र बन गया ।

मध्यकालीन दर्शन में प्रथम भौतिकवादी रुझान नामवाद था जो १३वीं शताब्दी में प्रकट हुआ । उसके अनुयायी अंगरेज दार्शनिक डन्स स्काटस और ओक्कम ने विश्व के भौतिकवादी प्रकृति को स्वीकार किया और अध्यात्मवादी विश्वास, जो मन की प्राथमिकता पर जोर देता हैं, के विपरीत प्रकृति को प्राथमिकता दी । वे दुनिया के रहस्योद्‍घाटन की संभावना को भी मानते थे । यह यान्त्रिक और द्वन्द्वात्मक अभौतिकवाद था । १३वीं·शताब्दी के अन्त से लेकर १५वीं शताब्दी तक नामवाद में अध्यात्मवादी विचारों के सामने झुकनेवाले तत्त्वों की वृद्धि हुई ।

नामवाद के खिलाफ विरोध का उदय खुशहाल नगर-वासियों में ही नहीं हुआ बल्कि किसानों और नगर के आम

लोगों में भी पैदा हुआ और शक्तिशाली गिरजे के खिलाफ होने-

वाले संघर्ष से इसका गहरा सम्बन्ध था।

सामाजिक हैसियत के अनुसार, इस विरोध ने शहरी (नागरिक) या ग्रामीण (किसान) नास्तिकों को जन्म दिया। चूँकि यह एक सैद्धान्तिक वर्ग-संघर्ष था अतः नास्तिकता के पीछे अक्सर सामन्तवाद-विरोधी सशस्त्र विद्रोह होते थे। कभी-कभी ग्रामीण विरोध रहस्यवादी शिक्षा में प्रकट होता था जो बड़े गिरजे के खिलाफ लक्षित होता था।

अध्यात्मवाद और धर्म के खिलाफ इन मध्यकालीन संघर्षों ने आधुनिक युग में भौतिकवाद और नीतिशास्त्र के उदय की नींव डाली।

जनता का सामन्तवाद-विरोधी संघर्ष : सामन्ती शोषण से किसानों और कारीगरों के बीच प्रबल प्रतिरोध पैदा हुआ और छोटे उत्पादक के अर्थतंत्र के स्वतंत्र चरित्र और सामंती कुलीनों पर उनकी अनार्थिक निर्भरता के बीच जो अन्तर्विरोध है उसने उत्पीड़ित जनता को हिंसक सामन्त-विरोधी वर्ग संघर्ष का आधार प्रदान किया।

वर्ग-संघर्ष का स्वरूप बहुत से ठोस ऐतिहासिक तत्त्वों पर अवलम्बित था—उत्पादकशक्तियों के विकास का स्तर, उत्पादन सम्बन्ध का स्वरूप, प्रशासन और राजनीतिक संस्था।

सामन्ती समाज के विकास के तीनों काल का चरित्र अपने जमाने की आम जनता, खासकर किसानों, द्वारा शोषण के खिलाफ चलाये जानेवाले वर्ग संघर्ष के कारण, उद्देश्य और स्वरूप की खास विशेषताओं पर आधारित था। मध्यकाल में गुलामी और अन्य प्रकार की सामन्ती अधीनता से मुक्ति पाने की इच्छा

वर्ग-संघर्ष की समान विशेषताएँ थीं। फिर भी, सामन्तवाद के ह्रास के दिनों में कुछ खास अवस्थाओं में ही वर्ग-संघर्ष से सामन्ती व्यावस्था का पतन हो सकता है। अपने विकास के पहले के स्तर में सामन्तवाद, उत्पादक शक्तियों के विकास को प्रोत्साहित करता रहा।

जैसा कि हमने ऊपर वताया, मध्ययुग के प्रारंभ का चरित्र अर्धदासता के खिलाफ किसानों के संघर्षों से निर्धारित हुआ। सामन्ती विकास का दूसरा काल, मुद्रा तथा मूल्यसम्बन्धों के विकास से सम्बन्धित था, तूफानी घटनाओं से अंकित था। यूरोप में नगरों ने स्वशासन के अधिकार एवं सामन्ती वाध्यताओं और करों को व्यवस्थित एवं कम करने की मांग को लेकर शासकों के खिलाफ एक भयानक संघर्ष चलाया। इसके वाद "नगर प्रतिनिधियों" और कारीगर-संघ का संघर्ष आया जो नगर प्रशासन में भाग लेने के अधिकार के लिए लड़ रहे थे; अन्त में एक तरफ नगर प्रतिनिधि और कारीगर-संघ के मालिक तथा दूसरी तरफ शहर के गरीवों द्वारा समर्थित मजदूरों के वीच संघर्ष हुआ।

ग्रामों के वर्ग-संघर्ष में शहरी गरीबों का अक्सर समर्थन प्राप्त हुआ। इस गहरे सामाजिक अन्तर्विरोध के फलस्वरूप शहरी गरीवों के समर्थन से किसानों के गम्भीर विद्रोहों की लहर १३ वीं और १४ वीं शताब्दियों में सम्पूर्ण यूरोप में दौड़ गयी: १२५१ में "चरवाहा विद्रोह", १३२० में दक्षिणी नीदर-लैण्ड और फ्रांस में जनआंदोलन, इटली में डोलकिनो आंदोलन (१३०५-०७), फ्रांस के एटिएन्ने मारसेल और जैक्विरि का

विद्रोह (१३५७-५८), इंगलैण्ड में वाट टाइलेर का विद्रोह

(१३८१) और बोहिमिया का हुस्सिटे क्रांतिकारी आन्दोलन।

सामन्तकाल में बहुत से एशियाई देशों में गंभीर जनविद्रोह हुए : बगदाद के खलीफा के राज्य में लोकप्रिय आन्दोलन (८ वीं और ९ वीं शताब्दी), दिल्ली के गरीबों का हाजीमाऊल विद्रोह (१४ वीं शताब्दी के प्रारंभ में), चीन में किसान युद्ध (९ वीं शताब्दी) और "लाल रूमाल" आन्दोलन (१४ वीं शताब्दी), कोरिया में विद्रोह (१२३३ में और १५ वीं शताब्दी के आखिर में), जापान में खुला विद्रोह (१५ वीं और १६ वीं शताब्दी), बोलोटनिकोव (१७ वीं शताब्दी का प्रारंभ) और रजीन (१७ वी शताब्दी के तीसरे हिस्से में) के किसान युद्ध।

इनमें से प्रत्येक की अपनी खास विशेषता थी। किसानों के विद्रोहों ने, जिनका उद्देश्य श्रमजीवी जनता की जिन्दगी को उन्नत करना था, सामन्ती उत्पादक शक्तियों के विकास में सहायता पहुंचायी और इस तरह जो भूमिका अदा की वह प्रगतिशील और क्रान्तिकारी थी। किसानों की, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और अपनी जमीन का स्वामी होने के अलावा शायद ही और कुछ कामना थी। बहुत सी क्रान्तियों में किसानों ने सभी सामन्ती बाध्यतायें और लगान का अन्त करने की मांग करने का साहस नहीं किया, लेकिन अपने उत्तरदायित्वों की संख्या घटाने तक मांगें सीमित रखीं। उनका यह समझना गलत था कि उनकी सीमित मांगों की पूर्त्ति शासक वर्ग करेगा।

अपर्याप्त संगठन और विद्रोहियों के बीच एकता के अभाव से—जो कृषि-श्रम की खास विशेषताओं का परिणाम है और

अनुभवी नेतृत्व के अभाव के कारण—किसान आंदोलन निश्चित

रूप से असफल हुए ।

३. सामन्तवाद के ह्रास का युग : (पूँजीवाद का उदय)

ऊपर बताये गये सामन्तवादी उत्पादन के तरीकों के चरित्र-गत विशेषताओंने सामन्ती विकास के तीसरे और अन्तिमकाल तक अपना महत्त्व कायम रखा । उदीयमान पूंजीवाद से वे धीरे-धीरे प्रभावित होते रहे। इस ऐतिहासिक युग का प्रारंभ १६ वीं शताब्दी से होता है, यद्यपि पूंजीवादी उत्पादन की जड़ इटली के कुछ शहरों में १४ वीं और १५ वीं शताब्दी में पायी जा सकती है ।

आर्थिक परिवर्त्तन : पूंजीवाद का उदय और उसके आदिम संचय की प्रारंभिक शर्त्तें । मध्य युग के तीसरे काल में उत्पादक शक्तियों का इस हद तक विकास हुआ था कि जहाँ सामन्तवादी अर्थव्यवस्था की तह में पूंजीवादी सम्बन्धों का प्रकट होना प्रारंभ हो रहा था, शोषकों का एक नया वर्ग, पूंजीपति, प्रकट हुआ, जो उत्पादन के साधनों और औजारों का स्वामी था और शोषितों का एक नया वर्ग, मजदूर या सर्वहारा, जो इन साधनों से वंचित होने से, अपनी श्रमशक्ति पूंजीपतियों के हाथ में बेचने के लिए बाध्य थे । पूंजीपतियों ने मजदूरों को अपने और अपने परिवार के निर्वाह के लिए आवश्यक श्रम से अधिक श्रम करने को बाध्य किया। वह जो अतिरिक्त श्रम करता था उससे अतिरिक्त मूल्य पैदा हुआ जिसे पूंजीपति अलग कर लेते थे । अतिरिक्त मूल्य को इस तरह अलग करके हथियाना पूंजीवादी शोषण का

एक खास स्वरूप है और यह पूंजीवादी तरीके के उत्पादन का एक बुनियादी नियम है।

सामन्तवादी व्यवस्था के भीतर पूंजीवाद के समीकरण के लिए उत्पादक शक्तियों का विकास एक पहली शर्त्त है।

जब १५वीं शताब्दी में धातु गलाने की भट्ठी का आविष्कार किया गया तब यांत्रिक फूक के लिए जलचक्र का इस्तेमाल किया गया था। जब तक गलानेवाली भट्ठी का आविष्कार नहीं हुआ था, हाथ से चलानेवाली भाथी ही धातुको मुलायम बना सकती थी। नवीन पद्धति से धातुओं को द्रव पदार्थ में बदलना संभव हुआ, जिससे लोहे से बहुत से सामान बनाना संभव हुआ। इस्पात का उत्पादन प्रारंभ हुआ जिसके फलस्वरूप औजारों में सुधार हुआ,—मोड़ने, छेदने और रेतने के मशीनों के उपयोग से।

कपड़े के उत्पादन में आदिम खड़े करघे की जगह समतल करघेने लिया। १२वीं सदी से प्रचलित आदिम घड़ी की जगह १५वीं शताब्दी में स्प्रिंग यांत्रिकता पर आधारित एक जेबी घड़ी का आविष्कार किया गया।

धातुओं के पुर्जे के उत्पादन से मनुष्य नये जहाजों का निर्माण कर सका जो लम्बी यात्रा करने की क्षमता रखता था और भारी सामान ढो सकता था। परकाल (Compass) में सुधार किया गया।

छापाखाने का आविष्कार किया गया। सुधारे हुए खेती के औजारों ने कृषि में उत्पादक शक्ति बढ़ायी, लेकिन उद्योग से कुछ कम स्तर पर। फसलके क्षेत्र का विस्तार किया गया, कृषि उत्पादन बढ़ा और कृषि में सुधार किया गया। व्यापक तौर से प्रचलित तीन खेतों में बारी-बारी से आबाद करने की प्रथा के

साथ, अनेक आवर्त्तन और गैरआवाद जमीनों को फिर आवाद करने की प्रथा भी लागू की गयी।

नगरों के विकास के साथ खाद्यपदार्थों की मांग बढ़ी। औद्योगिक विकास के साथ ऊन, चमड़ा, पटुआ और अन्य कृषि उत्पादनों की मांग बढ़ी।

मध्ययुग के अन्तिम काल में, खास तौर से पशुपालन, बागवानी, अंगूर की खेती और दारू के उत्पादन आदि में बड़ी तरक्की हुई।

कुछ इलाके और जिले खास फसल पैदा करने में कुशलता प्राप्त करने लगे। उपयुक्त क्षेत्रों में व्यावसायिक खेती प्रकट हुई। नीदरलैण्ड ने, उदाहरण के तौर पर, पशुपालन और दूध के उत्पादनों का निर्यात करने में विशेष योग्यता प्राप्त की। स्पेन के कुछ इलाके मेरिनो भेड़ पालने और ऊन के निर्यात में लगे हुए थे।

भिन्न प्रकार के उद्योगों और कृषि के विकास के फलस्वरूप कृषि उद्योग से अधिक पृथक हुई और औद्योगिक उत्पादन के नये क्षेत्रों का उदय हुआ। श्रम के सामाजिक विभाजन की प्रक्रिया अभी भी चल रही थी जिससे व्यावसायिक और मुद्रा के सम्बन्धों का विकास तथा व्यापार का विस्तार हुआ। पहले के जमाने में यदि बाजार एक खास इलाके तक सीमित था तो अब वह राष्ट्रीय पैमाने पर विकसित हुआ।

इन नयी परिस्थितियों में व्यापार के विकास से छोटे पैमाने के उत्पादन का ह्रास हुआ और पूंजीवादी सम्बन्धों के कुछ तत्वों के उदय को बढ़ावा मिला।

अपेक्षाकृत ऊंचे स्तर के पाटों के उत्पादन से व्यक्तियों के हाथों में बड़ी संख्या में मुद्रा का संचय हुआ, जैसे व्यापारी, महाजन आदि। पूंजीवाद के उदय के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक परिस्थिति थी। ऐसे स्वतंत्र लोगों का समूह भी था जो सामन्ती शोषकों तथा उदीयमान पूंजीपतियों द्वारा अपनी जमीन से भगाये गये थे और उत्पादन के साधनों से वंचित थे। फलस्वरूप जीवन निर्वाह के साधनों से वंचित थे। ये सब उसकी पूर्व शर्त्तें थीं जिसे मार्क्स ने पूँजी का आदिम संचय वताया था। इस प्रक्रिया के ऐतिहासिक पहलू का अवलोकन १६वीं और १७वीं शताब्दी के इंगलैण्ड में किया जा सकता है जहाँ पूंजीवाद का विकास अन्य सभी देशों से पहले हुआ।

यद्यपि १६वीं शताब्दी का इंग्लैण्ड एक छोटा देश था जिसकी जनसंख्या ३० या ३५ लाख की थी, तो भी एक शक्तिशाली आर्थिक उत्थान शुरू हुआ जो तीन शताब्दी बाद इंग्लैण्ड को सबसे अधिक मजबूत औद्यौगिक शक्ति बनानेवाला था। इस तरह १६वीं शताब्दी में पूंजीवादी औद्योगिक और कृषि सम्बन्धी विकास शुरू हुआ।

उद्योग में पूंजीवादी उत्पादन की प्रथम अवस्था सिर्फ सहयोगिता थी। बाहरी तौर से वह कारीगरों की एक बड़ी कर्मशाला-सी लगती थी, लेकिन मजदूर मजदूरी पर काम करने वाले होते थे, जो अब अपने लिए काम नहीं करते थे, लेकिन एक पूंजीपति, एक व्यापारी, थोक व्यापारी, महाजन या धनी कारीगर के लिए काम करते थे जो एक ही वस्तु पैदा करता था। श्रम का विभाजन नहीं था। लेकिन इस सहयोग से एक कारीगर की कर्मशाला की तुलना में श्रम और अधिक उत्पादकता का एक

निश्चित अर्थतंत्र पैदा हुआ । उनके श्रम के फल की यह वृद्धि मालिक हड़प लेता था ।

१६ वीं शताब्दी में इंग्लैण्ड के सभी उद्योगों में, खासकर कपड़े के उत्पादन में, निश्चित परिवर्त्तन देखा गया । कपड़े का उत्पादन जो नगर के कारीगर संघों तक सीमित था, ग्रामों में फैला । ग्रामीण कारीगर खेती का काम और कताई तथा बुनाई दोनों करते थे । महाजन, व्यापारी और छोटे मालिक का मुख्य काम, ग्रामीण कारीगरों द्वारा पैदा की हुई वस्तुओं को, उनके साधनों की कमी, एवं बाजार से दूर रहने की स्थिति से फायदा उठाकर, खरीद लेना था ।

मध्यवर्त्ती व्यक्ति मनमानी ढंग से वस्तुओं की कीमत तय करते थे; वह कारीगरों को कच्चे माल और औजार देते थे तथा उनका वितरक भी बनते थे । वास्तव में वे पूंजीपति बन रहे थे जो पहले के स्वतंत्र कारीगरों को मजदूरी देते थे । साधारण पूंजीवादी सहयोगिता की तुलना में यह एक नये ढंग का पूंजीवादी धंधा था जो शारीरिक श्रम के विभाजन पर आधारित था । इस धंधे को बड़े पैमाने पर उत्पादन कहते थे । ये वाणिज्य मुख्यतः पूंजी से स्थापित थे और वितरित उत्पादन के नाम से विख्यात हो गये, क्योंकि कारीगर घर में काम करते थे, एक आम कर्मशाला में नहीं । एक अन्य प्रकार के उत्पादन में नियोजक स्वयं सभी आवश्यक औजार और कच्चे माल खरीदते थे और एक बड़ी कर्मशाला स्थापित करते थे जहाँ सभी किराये के मजदूर केन्द्रित होते थे। यह केन्द्रीकृत उत्पादनशाला थी ।

दूसरे प्रकार की उत्पादनशाला से नये पूंजीवादी सम्बन्धों के विकास की व्यापक संभावना बनी।

उद्योग में इन सभी परिवर्त्तनों का अंग्रेजी समाज के सभी तबकों पर व्यापक असर पड़ा।

विकसित होनेवाले कपड़े के पूंजीवादी उत्पादन से कारीगरों के उत्पादन के लिए आवश्यकता की अपेक्षा अधिक ऊन और श्रम की आवश्यकता थी। भेड़ पालना एक लाभदायक व्यवसाय बन गया। चरागाह के लिए बड़े क्षेत्र की आवश्यकता पड़ी। छोटे रकबेवाले किसान अब तक अधिकांश चरागाहों के मालिक थे। १६ वीं शताब्दी के इंगलैण्ड में जमीन्दारों ने जो पुश्त-दर-पुश्त भेंड़ पालने का काम कर रहे थे, किसानों को अपनी जमीन से खदेड़ना शुरू किया और उन्हें हड़प लिया। किसानों के विशाल समूह को जमीन से वंचित किया और पूरे इलाके को जनशून्य बना दिया। अंग्रेज मानवतावादी टौमस मूरने अपने "उटोपिया" में समसामयिक इंगलैण्ड का इन शब्दों में वर्णन किया है: "तुम्हारी भेड़ ······आदमी को ही खा लेती है।" किसान जो जमीन से खदेड़े गये और अपनी सभी संपत्ति तथा जीवन निर्वाह के साधनों से वंचित थे, पूंजीवादी उत्पादन-शालाओं में नौकरी खोजने के लिए बाध्य थे। सामन्तवादी सरकार ने इस प्रक्रिया को सुविधा दी जिसने खानाबदोशों को सताने के लिए बहुत से सख्त कानून लागू किये जो "खूनी कानून" कहे जाते थे।

पूंजी के आदिम संचय के एक तरीके के रूप में किसानों की जमीन हड़पने का व्यवहार नीदरलैण्ड और फ्रांस में भी था। पूंजी के आदिम संचय का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत राजकीय ऋण

भी था। सेना और प्रशासन की व्यवस्था के लिए राज्य को बराबर मुद्रा की आवश्यकता थी और सभी खर्च पूरा करने के लिए टैक्स अपर्याप्त थे । सामन्तवादी राज्य, खासकर फ्रांस, अक्सर महाजनों और व्यापारियों से ऊंचे सूद पर कर्ज लेते थे ।

सामन्ती राज्य के कार्यों का आदिम संचय का सम्बन्ध एक और स्रोत से था––संरक्षणवाद । फ्रांस में, और बाद में इंगलैण्ड और नीदरलैण्ड में, आयात किये गये वस्तुओं पर भारी चुंगी लगती थी, कच्चे माल और खाद्य पदार्थों का निर्यात निषिद्ध था तथा व्यापारियों एवं नियोजकों (देश के भीतर) को आर्थिक सहायता, भत्ता और अन्य सुविधायें प्रदान की जाती थीं ।

महान भौगोलिक आविष्कार और औपनिवेशिक विस्तार का प्रारंभ : किसानों की जमीन को छीनने के अलावा नये भूभागों के आविष्कार के साथ पूंजी के संचय का एक दूसरा स्रोत खुला । उपनिवेश बढ़ते गये और उनकी संपत्ति लूटी गयी । व्यापारिक और सांपत्तिक सम्बन्धों के विकास से यूरोपीय सामंत वर्ग में धन की लालसा बढ़ी ।

धन की पिपासा से सामन्त साहसिक लोग सुदूर एशियाई देशों में दौड़ पड़े । कुछ अज्ञात देशों में पाये जाने वाले कल्पित धन की कहानियां पश्चिम में गढ़ी जाती थीं ।

स्पेन और पुर्तगाल के सामन्त सरदार और व्यापारी प्रथम उपनिवेश बसाने वाले थे । पुर्तगाली सोने की खोज में अफ्रीकी तट पर पहुंचे । सुप्रतीक्षा अन्तरीप (केप औफ गुड होप) का चक्कर काट कर वे आखिर भारत पहुंचे ।

१५ वीं शताब्दी के अन्त से पुर्तुगालियों ने भारत की लूट शुरू की; उसका मसाला, सोना, हाथी दांत के सामान और अन्य अपूर्व वस्तुओं की लूट की ।

१४९२ में जेनाअन क्रिस्टोफर कोलम्बस ने, जो स्पेन के बादशाह की सेवा में थे, अमरीका का आविष्कार किया। कोलम्बस द्वारा आविष्कार की हुई सभी भूमि स्पेन सम्राट की सम्पत्ति घोषित की गयी । कोलम्बस को यह ज्ञान नहीं था कि नयी आविष्कृत भूमि एक नये महादेश का हिस्सा है । फ्लोरेन्टियन अमेरिगो वेसपुक्की ने दक्षिण अमरीका के उत्तरी हिस्से का पता लगाया और एक नये महादेश के अस्तित्त्व की घोषणा की जिसका बाद में उनके सम्मान में अमरीका नामकरण किया गया ।

१६ वीं शताब्दी के प्रारंभ में एक पुर्तगाली कुलीन मेगल्लेन ने, जो स्पेन के बादशाह की सेवा में था, यूरोप से सुदूरपूर्व के लिए दक्षिण-पश्चिम मार्ग का पता लगाया। इस तरह अतलांतिक और प्रशांत के बीच का सम्बन्ध पूरा हुआ । उसकी यह यात्रा विश्व के चारों तरफ होनेवाली प्रथम यात्रा थी ।

१६ वीं शताब्दी में जो महान् भौगोलिक आविष्कार हुए उनके फलस्वरूप यूरोप में गंभीर सामाजिक-आर्थिक परिवर्त्तन हुए : विश्व बाजार का विस्तार, वितरित वस्तुओं की मात्रा में वृद्धि, दूसरे देशों की संपत्ति के लिए यूरोपीय देशों के बीच संघर्ष और औपनिवेशिक विस्तार का प्रारंभ ।

इन तत्त्वों के विकास से सामंती तरीके के उत्पादन का विनाश हुआ । उपनिवेशों से अर्जित धन यरोप में उमड़ने लगा और उसका पश्चिमी यूरोप की, और खासकर स्पेन और पुर्त-

शताब्दी में ७० लाख और १९ वीं शताब्दी में ४० लाख। सब

मिलाकर १ करोड़ ५० लाख गुलाम भेजे गये। अन्य गणनाओं के अनुसार इसकी संख्या २ करोड़ आंकी गयी है।

गिरफ्तारी का प्रतिरोध करने के लिए बड़ी संख्या में अफ्रीकियों की कतल की गयी। उससे भी अधिक लोग बाहर भेजनें की यंत्रणा और कठिनाइयों से मरे। दु-बोइस के अनुसार अमरीका में लाये गये हर एक अफ्रीकी गुलाम के पीछे पाँच अन्य व्यक्ति अफ्रीका में मारे गये या नयी दुनिया के मार्ग में मरे। उनका निष्कर्ष है कि इस गुलाम–व्यापार के अभियान से अफ्रीका ६ करोड़ आबादी से वंचित हुआ। अन्य इतिहासज्ञों ने इससे भी बड़ी संख्या बतायी है।

१८वीं शताब्दी के अन्त में गुलाम व्यापार चरम सीमा पर पहुंचा।

समय बीतने के साथ अफ्रीकी महादेश एवं दुनिया के अन्य भागों का नया महत्व बढ़ने लगा। पूँजीवादी देश उपनिवेशों को अपने सामानों के लिए बाजार के रूप में, अपने उद्योगों के लिए रास्ते, मजदूरों और कच्चे माल के क्षेत्र के रूप में देखने लगे।

साम्राज्यवाद के युग में उपनिवेश बड़े पूँजीवादी देशों के कृषि और कच्चे मालों के उपखण्ड के रूप में बदले गये और वे महत्त्वपूर्ण सैनिक अड्डे माने जाते थे।

उपनिवेशों के लिए संघर्ष के साथ साम्राज्यवादी देशों के बीच दुनिया का क्षेत्रीय विभाजन २०वीं शताब्दी की मोड़ तक पूरा हो चुका था। संपूर्ण अफ्रीका, जिसे एशिया और अमरीका के बाद उपनिवेश बनाया गया था, साम्राज्यवादी शक्तियों द्वारा कब्जा किया गया। उनकी उत्पीड़न और शोषण की नीति

से अनिवार्य रूप से पददलित लोगों का मुक्ति-आन्दोलन तीव्र हुआ।

राष्ट्रों का रुपीकरण : पूँजीवादी सम्बन्धों के रुपीकरण का यूरोप के सामाजिक और राजनीतिक ढाँचे पर बड़ा असर पड़ा। राष्ट्रीय समूहों का गठन ऐतिहासिक समीकरण के रूप में पैदा हुआ। यह कुल एवं कबीलों के बाद हुआ। यह प्रक्रिया आदिम-सामुदायिक व्यवस्था के ह्रास के जमाने में शुरू हुई। दास-स्वामी सम्बन्ध जिन देशों में विकसित हुआ वहां राष्ट्रीय समूहों का, उदय दास प्रथा के रुपीकरण के समानान्तर में हुआ। उन देशों का, जहां दास प्रथा नहीं पनपी, विकास सामन्ती सम्बन्धों के साथ हुआ। जब तक विकसित सामन्तवाद का पदार्पण हुआ, तब तक एशिया और यूरोप के बहुत से देशों में राष्ट्रीय समूह अन्तिम रूप धारण कर चुके थे।

आधुनिक राष्ट्रों के रुपीकरण के लिए जो पूर्व शर्त्तें थां वे उदीयमान पूँजीवाद के युग में ही प्रकट हुईं। इस ऐतिहासिक प्रक्रिया का आधार राज्य की आर्थिक एकता और राजनीतिक केन्द्रीयकरण था। देश के विभिन्न भागों के बीच आर्थिक सम्बन्धों के मजबूत होने से एक अन्य भाषा और राष्ट्रीय संस्कृति का उदय हुआ।

चूँकि राष्ट्रों का गठन पूंजीवादी उत्पादन सम्बन्धों पर आधारित था और विकसित होनेवाले राष्ट्रीय सम्बन्धों का चरित्र पूँजीवादी था, राष्ट्रों में सभी वर्गों और तबकों के लोग सम्मिलित थे, लेकिन पूँजीपतियों के हाथ में आर्थिक और राजनीतिक सत्ता रहने से, उदीयमान राष्ट्रों का चरित्र भी पूँजीवादी

रहा । उदीयमान राष्ट्रों के आदर्शों के बारे में भी यही बात कह सकते हैं ।

यह प्रक्रिया पूंजीपति वर्ग के संगठन से सम्बन्धित थी जो अब एक नये शोषक वर्ग के रूप में प्रकट हुआ था। वह सर्वहारा वर्ग के साथ ही साथ विकसित होता रहा, उनका सम्बन्ध हमेशा परस्पर-विरोध का रहा ।

सार्वभौम सामन्ती राजतन्त्र : पूंजीवादी सम्बन्धों के विकास से सामन्ती कुलीनतन्त्र के समक्ष राजनीतिक व्यवस्था के पुनर्गठन का काम उपस्थित हुआ जिससे वे अपना वर्ग-प्रभुत्व कायम रख सकें । इसका परिणाम हुआ सार्वभौम सामन्ती राजतन्त्र ।

सामन्त कुलीनों ने सर्वोपरि चाहा कि बढ़ने वाले उत्पादन से फायदा उठावें लेकिन वे यह नहीं देख सके कि विकसित होने वाले पूंजीवादी सम्बन्धों में क्या खतरा छिपा हुआ है और इसलिएउन्होंने उदीयमान पूंजीपति-वर्ग का समर्थन किया। आर्थिक प्रक्रिया में सामन्ती कुलीनों और पूंजीपति वर्ग के बीच कुछ पूर्व सम्बन्ध थे जिससे कुलीनों की स्थिति मजबूत थी। सामन्ती कुलीन अकेले पूंजीवादी उद्योगों को, जो सामन्ती राज्य केपास स्थापित होते थे, नियंत्रित रखने और चलाने का काम करने में असमर्थ थे । यह काम सामन्ती राज्य एक विशाल प्रशासनिक ढांचे से ही पूरा कर सकता था । पूंजीवादी उद्योगों पर टैक्स लगा कर शासक-वर्ग विकसित होने वाले व्यापार और उद्योग से काफी आय प्राप्त करते थे । इसके अलावा, सेना और राज्य की व्यवस्था करने के खर्च में काफी वृद्धि हुई । फलस्वरूप राज्य का राजस्व और टैक्सों में वृद्धिकरने के लिए सामन्त सरदारों

में काफी चिन्ता थी। सामन्ती करों ने केन्द्रित और सार्वभौम रूप धारण किया।

सामन्त वर्ग की आर्थिक माँगों के फलस्वरूप नौकरशाही का और केन्द्रीयकरण हुआ। यह तथ्य भी सख्त वर्ग-विरोध से सम्बन्धित था क्योंकि नौकरशाही के बढ़े हुए आर्थिक अधिकार के साथ किसानों और गरीब नगरवासियों का शोषण भी बढ़ा। सार्वभौम सामन्त राज्य का, इसलिए, मुख्य उद्देश्य जनता के असन्तोष का दमन करना था। इंग्लैण्ड में उसने उन किसानों के विद्रोह का दमन किया जो अपनी जमीन से भगाये गये थे। रूस में कुलीन वर्ग, १८वीं शताब्दी में समेलियन पुगाचोव के नेतृत्व में हुए, किसानों के हिंसक विद्रोह को दबा सका।

पुनरुत्थान, संस्कृति और सिद्धान्त : १४ वीं-१५ वीं शताब्दी में इटली के शहरों में पूँजीवादी सम्बन्धों के विकास से एक सैद्धान्तिक स्वरूप का उदय हुआ जिससे एक नये, प्रारंभिक पूँजीवादी संस्कृति, जिसे पुनरुत्थान कहा जाता था, का उदय हुआ।

प्रारंभिक पूँजीवादी सैद्धान्तिक समझते थे कि वे प्राचीन संस्कृति का "पुनरुद्धार" कर रहे हैं, इसलिए उस सांस्कृतिक प्रवृत्ति का यह नामकरण किया गया।

उदीयमान पूँजीवादी उत्पादन से प्राकृतिक दृश्यों के अध्ययन की बहुत दिलचस्पी बढ़ी; इसके फलस्वरूप १५वीं शताब्दी के अन्त में शिल्प कला और प्राकृतिक विज्ञान का तेजी से विकास हुआ।

१६वीं-१७वीं शताब्दियों में प्राकृतिक विज्ञान के विकास में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। प्रयोगात्मक अनुसंधान द्वारा धार्मिक

रूढ़ियों का विरोध किया जाता था। उस समय अत्यधिक प्रगति हुई। प्राकृतिक नियमों का आविष्कार हुआ। वैज्ञानिक आविष्कार प्राचीन सामन्ती कैथोलिक दृष्टिकोण के खिलाफ लगातार संघर्ष के साथ आगे बढ़ा। एक नये दर्शन का उदय हुआ जो मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन के हर पहलू को—विज्ञान, साहित्य, कला आदि को—स्पर्श करता था। यह सबसे महान प्रगतिशील उथल-पुथल था जो दुनिया में अभूतपूर्व था।

पुनरुत्थान ने कई महापुरुषों को पैदा किया जिनमें महान चित्रकार, गणितज्ञ और इंजीनीयर लियानार्डो दि विन्सि (१४५२-१५१९), चित्रकार और मूर्त्तिकार मइकेलन्जलो बुओनारोटी (१४७५-१५६४), चित्रकार सामुयेल (१४८३-१५२०) और टिटियान (१४७७-१५७५), कवि लोडो विको अरियोस्टो (१४७४-१५३२) और अन्य लोगों का हम नाम ले सकते हैं जिनका विश्व संस्कृति में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

पुनरुत्थान के युग में नये सैद्धान्तिक रुझानों का सार "मानववाद" के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इन विचारों के समर्थक नयी संस्कृति की धर्मनिरपेक्षता, सामन्तवाद और गिरजे के आध्यात्मिक अत्याचारों से उसकी मुक्ति पर जोर देते थे। मानववादी व्यक्ति के मूल्य पर विशेष जोर देते थे।

लेकिन चूँकि मानववादी उदीयमान पूँजीवादी व्यवस्था के पोषक थे, उनका झुकाव अति व्यक्तिवाद और किसी भी उपाय से व्यक्तिगत सफलता पाने की इच्छा की ओर था; दूसरे शब्दों में उनका आदर्श खुशहाल पूंजीपति वर्ग था। इससे पूँजीवादी "मानववाद" बना, जो मजदूर वर्ग द्वारा घोषित वास्तविक, सार्वभौम मानववाद से भिन्न था।

सुधारवाद : सामन्ती समाज के सैद्धांतिक आधार के रूप में कैथोलिक धर्म का विरोध करने में पूंजीपति, एक शोषक वर्ग की हैसियत से, धार्मिक विश्वासों को बिल्कुल त्याग नहीं सके। इसलिए उन्होंने गिरजा और धर्म को बिल्कुल भंग करने का समर्थन नहीं किया, लेकिन उसका सुधार—कैथोलिकवाद के बदले में प्रोटेस्टेन्टवाद—का प्रचार किया जो उदीयमान पूंजीपति वर्ग के हितों और दृष्टिकोण के लिए अधिक उपयुक्त था।

धार्मिक रूढ़ियों और सदियों से कैथोलिक गिरजों द्वारा प्रतिष्ठित धार्मिक विधियाँ वंचना और अनुयाइयों और आम जनता के अज्ञान पर आधारित थीं एवं उनकी पवित्रता के और वाह्य प्रदर्शन पर ही विश्वास कायम था; यह शासन करनेवाले सामन्त वर्ग का उद्देश्य—जनता को आज्ञाकारी बनाये रखने के—बिल्कुल अनुकूल था।

पण्य उत्पादन का विकास और बाद में पूंजीवादी सम्बन्धों के विकास के साथ अर्धगुलामी से किसानों की मुक्ति हुई, शहरी आबादी और उसके सांस्कृतिक स्तर का विस्तार हुआ। इन ऐतिहासिक परिस्थितियों ने विकासमान पूंजीपति वर्ग को बाध्य किया कि वह अधिक पेचीदे मत का प्रतिपादन करे और जनता के दिमाग को विषाक्त बनाने के लिए अधिक तर्कयुक्त मार्ग निकाले जो कैथोलिकों द्वारा अब तक काम में लाये हुए तरीकों से अधिक प्रभावशाली हो। कैथोलिक विधियों और मतों के बड़े भाग का तिरस्कार करते हुए सुधारवादियों ने नये सिद्धान्तों का प्रचार किया जिसने पवित्रता को व्यक्ति की आंतरिक दुनिया में बदल दिया। धार्मिक विधियों को जहाँ तक बर्दाश्त किया जा सके सरल बना दिया गया और गिरजों से

खर्चीले साज-सामान और सजावट को हटाने एवं तथाकथित "सस्ते" गिरजे की स्थापना की माँग की गयी।

प्रोटेस्टेन्टवाद का मुख्य सिद्धान्त धार्मिक ग्रन्थों के अक्षर और भावना का सख्त पालन था जिसे प्रोटेस्टेन्ट सत्य के पहचानने का एकमात्र साधन समझते थे। धार्मिक विश्वास के मामले में पोप (पुरोहित) गलती नहीं करता इसे वे नहीं मानते थे।

सुधारवाद का जन्मस्थान जर्मनी था। बाद में १५२४-२५ का महान किसान-युद्ध पूँजीवादी और सामन्ती व्यवस्था के बीच की प्रथम मुख्य लड़ाई थी, और वह यूरोप में पूँजीवादी क्रान्ति का प्रथम संकेत था।

प्रोटेस्टेंटवाद का शास्त्रीय रूप स्विट्जरलैण्ड के एक प्रचारक जीन कालविन की शिक्षा में निहित है। उनका विश्वास था कि हर मनुष्य का भविष्य भगवान ने दुनिया की सृष्टि करने के बहुत पहले ही निर्धारित कर दी है। (भगवान द्वारा पूर्वभाग्य निर्णय का मत)। इसलिए मनुष्य अपने पेशेवर धन्धे में सफलता हासिल करके ही यह साबित कर सकता है कि वह भगवान का चुना हुआ था। कालविन ने प्रचार किया कि व्यापारी और मालिक का मुख्य उद्देश्य अपनी संपत्ति बढ़ाने का होना चाहिए, जो ईश्वर द्वारा उन्हें सुपुर्द की हुई है। इसलिए किराये के मजदूरों के शोषण का कालविन के अनुयाई आदर करते थे और बाद में प्रोटेस्टेन्ट सिद्धान्त उसे एक पवित्र उद्देश्य समझता था।

प्रोटेस्टेन्टवाद यूरोपीय महादेश में फैला जहाँ पूँजीवादी उत्पादन तेजी से बढ़ रहा था।

नीदरलैण्ड में पूंजीवादी क्रान्ति, १६वीं शताब्दी : विकसित होने वाली उत्पादक शक्तियों और सामन्ती व्यवस्था के

पतनोन्मुख उत्पादन सम्बन्धों के बीच बढ़ता हुआ परस्पर विरोध नये पूंजीवादी सम्बन्धों की अंतिम स्थापना तब तक नहीं कर सका जब तक सामन्ती राजनीतिक संस्थाओं को और पहले और सर्वोपरि सामन्ती राज्य-व्यवस्था को नष्ट नहीं किया। लेकिन ये परिवर्त्तन शान्तिमय संक्रमण से नहीं हो सका। इसलिए सामन्ती राजनीतिक-व्यवस्था का विनाश एक क्रान्ति द्वारा होना सामाजिक प्रगति का एक वस्तुगत नियम है।

सुधारवाद और जर्मनी के किसान-युद्ध के बाद, पूंजीवादी क्रान्ति का प्रथम प्रयास विफल हुआ। एक दूसरा प्रयास नीदरलैण्ड में किया गया (१५६६-१६०९) जो स्पेन के शासन के खिलाफ राष्ट्रीय मुक्ति-युद्ध के रूप में था।

नीदरलैण्ड की क्रान्ति और बाद की सभी क्रान्तियों के प्रगतिशील स्वभाव के बावजूद शोषण का अंत नहीं हुआ, लेकिन सामंतवाद के बदले में पूंजीवादी शोषण की स्थापना हुई।

यह प्रथम सफल पूंजीवादी क्रान्ति थी, लेकिन उसकी सफलता का श्रेय आम जनता को था। लेकिन यूरोप में पूंजीवादी सम्बन्धों के आगे विकास पर उसका बहुत सीमित असर पड़ा। १६वीं शताब्दी के मध्य में इंगलैण्ड की पूंजीवादी क्रान्ति और खासकर १८वीं शताब्दी के अंत में फ्रांस की क्रान्ति से सही पूंजीवादी युग वास्तविक अर्थ में विकसित हुआ।

उपसंहार

हमने देखा कि मानव समाज का विकास एक सामाजिक आर्थिक ढाँचे की जगह दूसरा अधिक प्रगतिशील व्यवस्था के कायम करने से होता है। इसलिए प्रत्येक ढाँचा एक निश्चित ऐतिहासिक समाज का, उसके सामाजिक-आर्थिक सम्बन्धों, उत्पादक शक्तियों, राजनीतिक संस्थाओं और आदर्श के विकास के स्तर से जुटा हुआ होता है।

आदिम समुदायों के पतन के साथ समाज का वर्गों में, बड़े सामाजिक समूहों में विभाजन हुआ; उनमें से एक साधन और उत्पादन के उपकरणों का स्वामी होता था और दूसरे के पास कुछ नहीं होता था।

इसलिए, उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व से एक समूह के लिए यह संभव हुआ कि वह दूसरे का शोषण करे जो इन साधनों से वंचित थे तथा उनके श्रम के फल को वे लोग हड़प सकें। इस तरह दास-स्वामी समाज से दो बुनियादी वर्गों का जन्म हुआ—दास और दास-स्वामी।

उत्पादक शक्तियों के विकास से, जो सभी मानव प्रगति की प्रेरक शक्ति थी, दास-स्वामी सामाजिक ढांचा क्रान्तिकारी रूप से भंग हुआ और उसकी जगह पर सामन्ती व्यवस्था कायम हुई। लेकिन, नया सामन्ती समाज भी श्रम-

जीवी जनता का शोषण, किसानों और कारीगरों का जमीन्दारों द्वारा शोषण, पर आधारित था।

उसके बाद पूंजीवादी क्रान्ति हुई जिसने सामन्तवाद का अंत कर दिया, लेकिन जिसने जनता का शोषण जारी रखा यद्यपि सामन्तवादी व्यवस्था को खतम करने में श्रमजीवी जनता ने ही निर्णायक भूमिका अदा की थी।

लेकिन, श्रमजीवी जनता की मुक्ति की संभावना ने एक दूसरा पहलू धारण किया। पूंजीवादी क्रान्ति ने पूंजीवाद के लिए रास्ता साफ किया। उसके आगे विकास के लिए, प्रगतिशील आर्थिक परिवर्त्तन के लिए परिस्थिति पैदा हुई। इन परिवर्त्तनों का सार है, शारीरिक श्रम से मशीनी उत्पादन में, पूंजीवाद की प्राथमिक अवस्था-निर्माणशाला में उत्पादन से उच्च स्तर के औद्योगिक पूंजीवाद-मशीनों के उद्योग-संक्रमण में निहित है।

यह एक वास्तविक औद्योगिक क्रान्ति थी, जो उत्पादक शक्तियों की उभाड़ से ही सम्बन्धित नहीं, बल्कि संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्त्तन से भी सम्बन्धित थी।

हमने पहले ही बताया है कि पूंजीपति वर्ग, बुर्जआजी, के प्रकट होने से उसके विरोधी मजदूर-वर्ग, सर्वहारा का भी जन्म हुआ। उत्पादन के सामाजिक चरित्र और निजी ढंग की मिल्कियत के बीच जो अंतर्विरोध है वह मजदूर वर्ग और पूंजी-पति वर्ग के बीच के अलंघ्य अन्तर्विरोध में प्रतिबिम्बित होता है और यही पूंजीवादी समाज का मुख्य अन्तर्विरोध बना।

मजदूरों का शोषण बढ़ा। वे खुद मशीन का एक हिस्सा बन गये। उनकी मजदूरी घटी। सस्ते मजदूर के रूप में

औरतों और बच्चों की बहाली आम बात हो गई। हर लड़के को १४-१८ घंटे रोज काम करने के लिए मजबूर किया जाता था, जब तक कि वे बिल्कुल थक नहीं जाते थे।

औद्योगिक क्रान्ति और औद्योगिक पूंजीवाद का विकास अपने साथ वर्ग शक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध एवं वर्ग संघर्ष के स्वभाव में क्रान्तिकारी परिवर्त्तन उन देशों में लाया जहाँ क्रान्ति हुई थी। औद्योगिक प्रगति से मजदूर वर्ग का और विकास हुआ जो राजनीतिक घटनाओं की गतिपर अधिक असर डालना शुरू कर रहे थे। फिर भी पूँजीवाद के विकास की प्रारम्भिक अवस्था में मजदूर वर्ग ने कोई स्वतंत्र भूमिका अदा नहीं की; वह एक ऐसा वर्ग था जो अपने वर्ग-स्वार्थ के प्रति अब तक पूर्ण सजग नहीं था। यह "अपने में एक वर्ग" और बाद में "अपने लिए वर्ग" बननेवाला था, पूँजीपति वर्ग के खिलाफ अपने हितों की रक्षा के लिए लड़ने के लिए तैयार नहीं था।

पूँजीवादी शोषण के खिलाफ मजदूर वर्ग के आन्दोलन ने धीरे-धीरे सख्त रूप धारण किया।

पूँजीपति वर्ग, बहुत पहले से ही अपने वर्ग स्वार्थ से सजग एक वर्ग में गठित था। अब वह औद्योगिक मजदूरों के विरोध का भजन बन गयी। ये मजदूर अपने वर्ग की हालत सुधारने के लिए सख्त लड़ाई के लिए तैयार थे। काल्पनिक समाजवादी एक सुधरी हुई सामाजिक व्यवस्था का स्वप्न देखते थे और समाजवादी आदर्शों को लागू करना चाहते थे।

चाहे जो हो, मजदूर-वर्ग का आन्दोलन और समाजवाद एक दूसरे से पृथक था; मजदूर वर्ग का आन्दोलन स्वयंस्फूर्त था। काल्पनिक समाजवादियों को मानव समाज के विकास

का कोई वैज्ञानिक ज्ञान नहीं था और इसलिए मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी आंदोलन को राजनीतिक चेतना से अनुप्राणित नहीं कर सके। इस ऐतिहासिक सुकर्म का अनुष्ठान विशिष्ट क्रान्तिकारी एवं वैज्ञानिक चिन्तन के प्रतिभाशाली कार्ल मार्क्स और फ्रेडेरिक ऐंगेल्स ने किया।

उनका क्रान्तिकारी विश्व-दृष्टिकोण विश्व-इतिहास के गहरे अध्ययन, खासकर वर्ग-संघर्ष के अनुभव और मजदूर-वर्ग और समाजवादी आन्दोलनों के अनुभवों पर आधारित था। मार्क्सवाद ने मानव-विचारों और संस्कृति के विकास में सभी मूल्यवान तत्वों का उपयोग किया और मानवजाति की सभी उपलब्धियों का वैध उत्तराधिकारी बना। मार्क्सवाद ने, तो भी, प्राचीन दार्शनिक, आर्थिक और समाजवादी शिक्षा को जारी रखने या सुधारने का काम नहीं किया। उसने विज्ञान और सामाजिक चिंतन, दोनों में एक वास्तविक क्रान्ति पैदा की।

मार्क्स और ऐंगेल्स ने अपने सैद्धांतिक कार्यों को एक क्रान्तिकारी मजदूर पार्टी के निर्माण करने के व्यावहारिक कार्य के साथ मिलाया।

यह प्रयास १८४७ में कम्युनिस्ट लीग और १८६४ में प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना में परिणत हुआ।

प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के कार्यों में फ्रांस के भाग लेने का बड़ा असर फ्रांसीसी मजदूरों की क्रान्तिकारी पेशकदमी के विकास पर पड़ा। इसके फलस्वरूप मार्च १८७१ की ऐतिहासिक घटना घटी। १८ मार्च १८७१ को मानवजाति के इतिहास में पहली बार राज-सत्ता मजदूर के हाथ में आयी। पेरिस कम्यून की स्थापना, यद्यपि वह केवल ७२ दिनों तक

रहा, मजदूर वर्ग के अधिनायकत्व का प्रथम प्रयोग था और उसने मार्क्स और ऐंगेल्स की क्रान्तिकारी शिक्षा को समृद्ध किया।

पेरिस कम्यून से इतिहास में एक नये युग का उदय हुआ। ७०-८० तक पूँजीवादी व्यवस्था का उदय विश्वव्यापी आधार पर हुआ था।

१९ वीं शताब्दी के अंत में और २० वीं शताब्दी के प्रारंभ में उत्पादक शक्तियाँ तीव्र गति से विकसित होने लगीं। उत्पादन को प्राथमिक महत्त्व मिला; मशीनों का उद्योग आगे आया। उद्योग और परिवहन के लिए बिजली का उपयोग एक सस्ती शक्ति के रूप में हुआ।

लेकिन विकसित होनेवाली उत्पादक शक्तियों का पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्धों के साथ तेजी से संघर्ष बढ़ता गया। ये उत्पादन-सम्बन्ध मनुष्य के विकास में बाधक हो रहे थे। बड़े समृद्ध देशों में मजदूर वर्ग का शोषण, औपनिवेशिक और राष्ट्रीय उत्पीड़न चरम सीमा पर पहुँच गये। अभी जनता की गरीबी शासक वर्ग की संपत्ति और आडम्बर के बिल्कुल विपरीत खड़ी थी। पूँजीवाद ने अपने विकास के सर्वाच्च और अन्तिम मंजिल—साम्राज्यवादी मंजिल में प्रवेश किया।

साम्राज्यवादी मंजिल पर पूँजीवादी देशों के असमान विकास के फलस्वरूप उनमें आपस का अंतर्विरोध तेज हुआ। प्रथम विश्व-युद्ध इस संघर्ष का स्वाभाविक परिणाम था और पूँजीवादी व्यवस्था के आम संकट में परिणत हुआ।

साम्राज्यवादियों की प्रतिक्रियावादी नीति का विरोध मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी संघर्ष से हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर

आन्दोलन में मार्क्सवादी श्रमजीवी जनता का संघर्ष तीव्र

हुआ।

विश्व क्रान्तिकारी आंदोलन का केन्द्र रूस बन गया, जहाँ मार्क्स और ऐंगेल्स के विशिष्ट अनुयाई व्लाडिमिर इलियिच लेनिन के नेतृत्व में प्रथम क्रान्तिकारी मार्क्सवादी पार्टी की स्थापना की गयी थी। लेनिन की पार्टी ने १९१७ की अक्टूबर क्रान्ति का नेतृत्व किया जिसने सर्वहारा अधिनायकतन्त्र की स्थापना की और मजदूरों को सत्तारुढ़ बनाया।

क्रान्ति विश्व-साम्राज्यवाद का मोर्चा तोड़ कर निकली और मानवजाति के इतिहास में एक नये युग का उद्घाटन किया—पूँजीवाद की जगह समाजवाद की स्थापना का युग, बदनाम औपनिवेशिक व्यवस्था का अन्त करने वाला युग, साम्राज्य वाद द्वारा पैदा की गयी सभी अमानुषिक, खूनी लड़ाइयों का अन्त करने वाला युग।